योगोपनिषदों में राजयोग

डॉ. लेखराम शर्मा

योगोपनिषदों में राजयोग
डॉ. लेखराम शर्मा

हर वर्ष 21 जून को विश्व योग दिवस के
रूप में भारतीय योगविद्या एवं संस्कृति
को वैश्विक पहचान और प्रतिष्ठा
दिलाने वाले विकास पुरुष, न्यायपरायण और
सर्वजन प्रेमी
मान्य प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी,
उनके सहायकों और समर्थकों
की सेवा में समर्पित

ॐ

॥ श्री परमगुरवे नमः ॥

''बन्धमोक्षौ बुद्धेरेव''

दु:ख-सुखरूप बन्धन हो या उससे
छुटकारा, होते दोनों मन के ही हैं।

–व्यास भाष्य, यो. सू. 2-18

वेदों में भगवत्प्राप्ति के प्रमुख तीन उपाय हैं– ज्ञान, उपासना और कर्म। उपनिषदों में इन्हें गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में उभारा गया है। इनमें से उपासना को दर्शन का रूप महर्षि पतञ्जलि ने दिया। उसी दर्शन को योगोपनिषदों में सरल और व्यावहारिक रूप दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक योग के दर्शन को समझने में मदद करेगी, यह मुझे पूर्ण विश्वास है।

साहित्यसेवकानुचर
डॉ. लेखराम शर्मा

राजयोग के निमित्त से

'योग' शब्द 'युज् समाधौ' और 'युजिर् योगे' दो धातुओं से सम्पन्न होता है। योगभाष्य में लक्षण मिलता है– योग: समाधि:। अर्थात् योग का अर्थ है– समाधि तथा 'युजिर योगे' का अर्थ है जुड़ना, आत्मा का परमात्मा से सम्बद्ध होना। प्राय: हठयोगी इसी अर्थ के पक्षपाती हैं। चेतनत्वेन जीवात्मा और परमात्मा पृथक् नहीं, एक ही हैं। यह केवल भेदाभास है, मात्र अविद्याजन्य और औपाधिक। यथा घटाकाश– मठाकाश उपाधिरूप घट और मठ नष्ट हो जाने पर मात्र महाकाश ही अवशिष्ट रहता है। सूत्ररूप में योगांगों का अभ्यास करते हुए चित्तवृत्ति का निरोध पूर्वक असम्प्रज्ञात समाधि की भूमिका में पहुँचकर निज चैतन्य स्वरूप अथवा ब्रह्मस्वरूप में अवस्थित हो जाना ही योग है– 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध: (पांतजल योग दर्शनम् सू. 2) अर्थात् चित्तवृत्ति के निरोध को ही 'योग' कहा जाता है।

दर्शनशास्त्र में 'योग दर्शन' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन में भी इस दर्शन की महत्त्वपूर्ण प्रासंगिकता है। मानव में जोड़ने की सहज प्रवृत्ति होती है। धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष में पुरुषार्थ चतुष्टय निर्दिष्ट किये गये हैं। इन चारों की प्राप्ति के लिए शरीर, इन्द्रियों एवं चित्त की शुचिता तथा नियन्त्रण की नितान्त आवश्यक होती है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योगशास्त्र का अध्ययन परम आवश्यक है। साधक को निज उद्देश्य की सिद्धि के लिए शरीर, इन्द्रियों तथा मन पर नियन्त्रण परम आवश्यक है।

श्रुति योग को ही निदिध्यासन की संज्ञा से अभिहित करती है–

'आत्मा वारे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च।'

–*(बृहदारण्यक 2/4/5)*

वैदिक ऋषियों के प्रातिभ चक्षु उन्मेष में योग ही प्रधान कारण रहा है। ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यक-ग्रन्थों, उपनिषदों, बौद्ध धर्म के पालि त्रिपिटकों तथा

इतर संस्कृत साहित्य ग्रन्थों में योग का शीर्ष स्थान रहा है। जैनाचार्य महावीर एक श्रेष्ठ योगी थे तथा जैन धर्म में भी योगशास्त्र का पर्याप्त उल्लेख है। उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र तथा आचार्य हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' में योग मीमांसा निदर्शनीय है। तन्त्र शास्त्र और नाथ सम्प्रदाय योगशास्त्र से सुसम्बद्ध रहे हैं। नाथपन्थी सिद्ध तो हठयोग के परमाचार्य रहे हैं। मन्त्र योग, लय योग आदि योग प्रसिद्ध ही हैं तथा योग का दार्शनिक विवेचन अभीष्ट होने से 'राजयोग' की प्रसिद्ध संज्ञा शोधकर्ता डॉ. लेखराम शर्मा द्वारा लिखित 'योगोपनिषदों में राजयोग' मुख्य केन्द्र बिन्दु है। यह सुस्पष्ट है कि योगशास्त्र सम्बन्धी पुष्कल जानकारी महर्षि पतंजलि से पूर्ववर्ती साहित्य में उपलब्ध होती है।

डॉ. शर्मा की प्रस्तुत शोधकृति अपने विषय की गूढ़ता को अतीव सरलता से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्ण सक्षम है। इन्होंने अपने प्रतिपाद्य विषय को सताईस उप शीर्षकों में विभाजित कर सूक्ष्मता से प्रत्येक बिन्दु को सिद्धान्तों-दृष्टान्तों से प्रतिपादित किया है। डॉ. शर्मा ने इक्कीस योगोपनिषदों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन, मनन, चिन्तन कर इनमें चित्त अथवा मन की भूमिका को स्थापित कर सफल योगनिरूपण किया है। वास्तव में यही योगचिन्तन हमारे अतीत का गौरव और मनीषा की स्थायी सम्पत्ति है। इस योग साधना से अनेक साधक अजर-अमर होकर सिद्ध गति को प्राप्त हुए हैं। योग ही मोक्षोपाय का सर्वसम्मत अविसंवादि सिद्धान्त है। सर्व योगसाधनों का राजा होने से राजयोग सर्वोच्च पदवी पर अवस्थित होता है। स्मृति शास्त्रकार भी कहते हैं-

'राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः।'

मन, बुद्धि चित्त और अहंकार में अन्तःकरण के चार भेद हैं। सृष्टि-स्थिति और लय का कारण अन्तःकरण ही है। उसकी सहायता से जिसका साधन किया जाता है, उसे राजयोग कहते हैं। राजयोग साधन में विचारबुद्धि का प्राधान्य रहता है तथा विचार शक्ति की पूर्णता द्वारा राजयोग सम्पन्न होता है।

सुधी शोधकर्ता ने इन सभी तत्त्वों का अपनी विवेच्य कृति में सूक्ष्मता से विवेचन किया है। दर्शनशास्त्र की चूड़ान्त योगोपनिषदों की अतुल मूल्यमयी ज्ञानसम्पदा में से डॉ. लेखराम शर्मा ने राजयोग में चित्त की भूमिका का परिशीलन कर अपने अतीव मनोयोग का परिचय दिया है। डॉ. लेखराम शर्मा हिमाचल प्रदेश के संस्कृत-हिन्दी तथा पहाड़ी (बघाटी) के विख्यात लेखक हैं। देश-प्रदेश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख, कविताएं और समीक्षाएं

प्रकाशित होते रहते हैं। इन्होंने लगभग एक दर्जन पुस्तकों का लेखन-प्रकाशन कर अपनी लेखकीय प्रतिभा का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक, कृषि-बागवानी, कलात्मक गतिविधियों में भी ये अग्रणी है। चार नवम्बर सन् 1970 से 29 फरवरी सन् 2008 तक विभिन्न राजकीय विद्यालयों, संस्कृत महाविद्यालयों में संस्कृत-हिन्दी विषयों का सफल अध्यापन तथा जून 2005 से फरवरी 2008 तक प्राचार्य के प्रशासनिक पद पर सफलतापूर्वक दायित्व सम्पादित किया। इन्हें अनेक सामाजिक, धार्मिक तथा सरकारी संस्थाओं ने इनकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए सम्मानित किया है।

इस शोध रचना के माध्यम से मेधावी लेखक ने अपने सर्वाङ्गीण दर्शन-विमर्श तथा शास्त्रीय वैशिष्ट्य को उजागर कर दिया है। योग साहित्य में राजयोग की अवधारणा, योगोपनिषदों का उदय, योग, प्रकृति, चित्त और वृत्तियां, योगज्ञान से वैराग्य, ईश्वर प्रणिधान, भक्तियोग, क्रियायोग, कर्मयोग, अष्टाङ्गयोग, ध्यानयोग तथा राजयोग में ईश्वरादि तत्त्व आदि सकल विषयों का लेखक ने प्रस्तुत रचना में सूक्ष्मता से विवेचन किया है।

मुझे विश्वास है कि यह शोध कृति दर्शनशास्त्र के विमलबुद्धि पाठकों के लिए बहुलाभप्रद रहेगी। मैं प्रतिभा के स्वामी, योग्य विद्वान् लेखक को इस रचना के प्रकाशनार्थ वर्धापन तथा साधुवाद प्रदान करता हूँ और आशाबद्ध हूँ कि लेखन के क्षेत्र में इनकी यह गति अबाध बनी रहे।

दिनांक: श्रावणी पूर्णिमा
03-08-2020

–डॉ. प्रेमलाल गौतम 'शिक्षार्थी'
सरस्वती सदन, रबौण
पत्रालय-सपरून-173211
जिला- सोलन (हि. प्र.)
सम्पर्क- 9418828207

नान्दीवाक्

मुझे यह जानकर अतीव हर्ष हुआ है कि सतत सारस्वतअध्यवसायी, सात्विक विचारों से ओत-प्रोत, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के महान् पुरोधा, 'समत्वं योग उच्यते' के सबल पक्षधर, अनेक रचनाओं के सुलेखक तथा सुधी सम्पादक, देववाणी और लोकवाणी के कुशल प्रचारक, सूत्रशैली के अनुयायी, बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. लेखराम शर्मा पूर्व प्राचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय सोलन ''योगोपनिषदों में राजयोग'' इस महत्त्वपूर्ण तथा समाजोपा-योगी विषय पर अपनी शोधात्मक कृति प्रकाशित करने जा रहे हैं। एतदर्थ प्रख्यात लेखक को मेरा कोटिशः वर्धापन।

मूलतः हम समानधर्मा एक ही भाषा, रीति, वृत्ति, नीति से समत्व योग का निर्वहण कर रहे हैं परन्तु यह भी एक सुखद संयोग है कि डॉ. लेखराम शर्मा की शोध विषय वस्तु 'योगोपनिषदों में राजयोग' है तो मेरा शोध कार्य प्रमुख उपनिषदों में आचारतत्त्व रहा है। इस प्रकार मति-गति का ऐक्य भी प्रतीत होता है। डॉ. शर्मा ने दर्शनशास्त्र का व्यापक विषय लेकर रचना का प्रणयन किया है, जो वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों आदि अनेक प्राचीन साहित्य से सतत प्रवाहित, इक्कीस योगोपनिषदों, बौद्ध, जैन धर्मों को प्रभावित करते पातंजल-योगदर्शन में समाहित होकर अतीत से वर्तमान तक निर्विवाद प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, सांख्ययोग, मन्त्रयोग, तन्त्रयोग, जपयोग, ध्यानयोग, हठयोग, लययोग तथा राजयोग आदि के द्वारा योग की व्यापकता को चिर स्थिर बनाये हुए हैं। चित्तवृत्ति के चाञ्चल्य से वृत्तिजप पूर्वक स्व स्वरूप का प्रकाश करना ही राजयोग है।

डॉ. लेखराम शर्मा ने अतीव सूक्ष्मता एवं सहजता से अपने आलोच्य राजयोग विषय का निरूपण एवं उपस्थापन किया है। राजयोग के साधकक्रम की समालोचना साधक की सोपानपद्धति से विज्ञ लेखक से निर्दिष्ट किया है।

दर्शन जैसे जटिल विषय को पाठक जनमन तक पहुंचने का भगीरथ प्रयास डॉ. शर्मा सूत्रशैली में लिखित चित्त अथवा मन की भूमिका को सरल शब्दों में वलयित किया है। योग ने तो विश्व को जोड़ने की अनूठी सीख दी है। वह आध्यात्मिक उन्मेष हो या शारीरिक-मानसिक विकास। विषय की गम्भीरता को सरल-सपाट रीति से प्रस्तुत करने की शक्ति-सामर्थ्य बहुत कम लेखकों को सुलभ है और सहृदय शर्मा जी उनमें अंगुलिअग्रगण्य हैं।

पुस्तक प्रकाशनार्थ पुनः शुभकमना। मुझे आशा है पाठक इस कृति से अवश्य लाभान्वित होंगे और आपकी यशस्विनी लेखनी उत्तरोत्तर वीणापाणि माँ शारदा के साहित्यकोश को समृद्ध करती रहेगी।

दिनांक 5 अगस्त, 2020

–डॉ. गोविन्द राम बडोनी
पूर्व प्राचार्य
प्रगति बिहार, सैलाकुई,
देहरादून (उत्तराखण्ड)

प्राक्कथन

भारतीय प्राच्य वेदाङ्ग और उपाङ्ग शास्त्रों में प्राण विद्या एवं चित्त की भूमिका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। यहाँ के प्रातिभ चक्षु ऋषि-मुनियों और साधु-सन्तों ने इसका विशद अध्ययन, मनन किया है। यह चित्त एवं प्राणोपासना भारतीय अतीत की महत्त्वपूर्ण विश्वकल्याणकारी हमारी महती सम्पत्ति है। हमारे पूर्व मनीषियों ने अपनी सात्विक वृत्ति एवं उर्वर प्रखर मस्तिष्क के प्रगाढ़ चिन्तन से इस चित्त एवं प्राण तत्त्व की वास्तविकता शरीर और बाह्य जगत् की कार्य प्रणाली एवं उसके प्रभाव को समीपता से देखा-परखा है। इसी चित्त एवं प्राण विद्या की सतत् उपासना कर उसके सिद्धान्तों और दृष्टान्तों को सूक्ष्मता से अपने मनन का विषय बनाया। इस चित्त एवं प्राण विद्या का उत्स वैदिक संहिताओं, विशेषतः ऋग्वेद एवं अथर्ववेद संहिताओं में उपलब्ध होता है (ऋग्वेद-1-64-31, 10-177-3)। उपनिषदों में तो चित्त एवं प्राणविद्या का सविस्तार उल्लेख सुलभ होता है। आरण्यकों के ऋषि प्रवर भी इस चित्त एवं प्राण विद्या से अछूते नहीं रहे (ऐतरेयारण्यक आनन्दाश्रम संस्करण पृ. 106)। इस प्राण तत्त्व की अनुशंसा करते आरण्यक का ऋषि कहता है- सर्वं हीदं प्राणेनावृतम् (ऐत. आ. पृ. 108)। प्राण अमर्त्य है तथा मरण-धर्मा शरीर के साथ एक स्थान पर रहता है-

यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः।

-(कौषीतकि उपनिषद् 1/2)

इसी चित्त एवं प्राणशक्ति की श्रेष्ठता, उपासना, अपार महिमा तथा ध्यान विधि ही योगदर्शन का प्रमुख विषय है।

संहिताओं, आरण्यकों में निहित प्राणविद्या और योग के बीजों का उद्गम अद्वयतारकोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, अमृतबिन्दूपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्,

नादबिन्दू पनिषद्, पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, मण्डल ब्राह्मणोप-निषद्, महावाक्योपनिषद, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगचूड़ामण्युपनिषद्, योग-तत्त्वोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, वराहोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, हंसोपनिषद्, तथा योगराजोपनिषद् इन इक्कीस योगोपनिषदों में योग की सकल विषय-वस्तु समाहित है। प्रस्तुत शोध कृति में इन्हीं योग तत्त्वों के अन्वेषण का प्रमुख विषय रहा है। इन बौद्धिक विषयों का तात्त्विक चिन्तन ही योगशास्त्र का लक्ष्य है। चित्त की भूमि, वृत्ति, अष्टाङ्ग, योगभूमि, चित्त स्वरूप, कैवल्य, कर्म विचार तथा ईश्वर चिन्तन आदि तत्वों का सार-संक्षेप में प्रतिपादन ही इस रचना का प्रतिपाद्य रहा है।

वराहोपनिषद् के अनुसार मन, बुद्धि अहंकार और चित्त चारों एक ही अन्तः करण के घटक हैं। अतः स्थूल रूप में दोनों शब्द एकार्थक है। मनोबुद्धि-रहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। शाण्डिल्योपनिषद् योगसाधना के प्रसंग में मन की जगह चित्त शब्द का प्रयोग करते हुए देखा जाता है।

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य नूनमुपशान्तं मनो भवेत् (पृ. 539)।

इस तरह राजयोग का पूरा जोर चित्त या मन के नाश करने पर है। अतः चित्त और मन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किए जाने में कोई असामान्य बात नहीं है।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार जितने समय में बारह प्राणायाम होते हैं उतने समय तक चित्त की एकाग्रता को धारणा कहते हैं। हृदयकमल में चतुर्भुजादि रूपों का चिन्तन करना चाहिए। ईश्वर गीता के आधार पर हृदय कमल, नाभि, मूर्धा और पर्वतादि की धारणा के देश या स्थान कहलाते हैं। यम से लेकर प्रत्याहार तक के योगाङ्ग देह, प्राण और इन्द्रियों के निग्रह रूप हैं। धारणा, ध्यान और समाधि तीन योगाङ्ग चित्त के निग्रह रूप हैं। भिक्षु मात्रा के आधार पर उत्तम, मध्यम और अधम प्राणायाम के तीन प्रकार करते हैं–

द्वादशमात्रः कनीयान् मध्यमो मात्रा चतुर्विंशः।
उत्तमः षट्त्रिंशन्मात्रो मात्रा भेदाः स्मृतास्तज्ज्ञैः।।

–*(योगसारसङ्ग्रह)*

प्रस्तुत रचना में पतंजलिकृत योग सिद्धान्तों को योगोपनिषदों में दिखाने का प्रयास किया गया है। इसमें मुझे कितनी सफलता मिली है, इसके लिए सुधी जन प्रमाण हैं। कौन-सा सिद्धान्त कहाँ और किस रूप में लिया गया है यही

सामञ्जस्य बैठाना मेरा लक्ष्य है।

अन्त में यह कहना चाहूँगा कि योगोपनिषदों को मैं जिस माध्यम से समझ सका हूँ वह है राजयोग या पातञ्जल योगदर्शन। दूसरे शब्दों में कहूँ तो योगोपनिषदें मेरी दृष्टि में एक विस्तृत योगदर्शन है। पश्चिमी दर्शन तथा उसके अनेक अनुयायियों ने भारतीय दर्शन को अव्यावहारिक माना है और मात्र इसको ख्याली पुलाव की संज्ञा दी है। इस मिथ्या आरोप के विरुद्ध मैंने दर्शन के व्यावहारिक रूप को प्रस्तुत किया है। विविध योगोपासक सम्प्रदायों में इसका सदैव प्रयोग होता रहा है तथा होता रहेगा।

मैं अपने जीवन के दैनिक व्यवहार में संस्कृत वाङ्मय और इतर साहित्य के अध्ययन से इस तथ्य पर पहुँचा हूँ कि मानव जीवन की उन्नति और अवनति में कोई एक ऐसा प्रधान तत्त्व अवश्य विद्यमान है जो संसार की विषमता और समता के लिए जिम्मेदार है। मेरे अनुभव के अनुसार वह तत्त्व केवल मनस् या चित्त ही है। उस मनस् तत्त्व की नींव पर ही राजयोग या योगदर्शन का भव्य प्रासाद सुसज्जित है। योगोपनिषदों को निमित्त बनाकर उनमें वर्णित योग की विभिन्न क्रियाओं में चित्त की भूमिका ही समक्ष आती है। मन संसार का संक्षिप्त रूप है। पूरा संसार इसके अन्दर विद्यमान है। मन है तो संसार है, मन नहीं तो संसार भी शून्य। यहाँ तक कि ईश्वर भी मन है। केवल मन को समझते हुए योग क्रियाओं को करने से ही मनुष्य मन या संसार से मुक्त होकर कैवल्य या स्वातन्त्र्य को प्राप्त कर सकता है। बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही तो है–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

–(*मैत्रायण्युपनिषद् प्रपाठक 4/112*

मैंने अपने विवेच्य विषय को सताईस शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। मानव सर्वदा अपूर्ण है और उस पूर्ण परम ब्रह्म का सदा समुपासक है।

भगवान् श्री कृष्ण, देवताओं और पूर्वजों की कृपा से श्रद्धेय गुरुदेव डॉ. रमाकान्त आंगिरस पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़-14 का विद्वत्तापूर्ण निर्देशन एवं शुभाशीर्वाद इस शोधकार्य के लिए मेरा पथ प्रदर्शक रहा है। एतदर्थ उनका कोटिशः अभिवादन एवं अभिनन्दन व्यक्त करता हूँ। अनेक शीर्ष गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता और विद्वज्जनों की शुभाकांक्षा ज्ञापित करता हूँ। मेरे विद्वान् साथी साहित्य मर्मज्ञ डॉ. प्रेमलाल गौतम 'शिक्षार्थी' पूर्व प्राचार्य राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, सोलन

(हि.प्र.) एवं. डॉ. श्री कृष्णलाल जी (ब्रूरी, सोलन) का हार्दिक धन्यवादी हूँ जिन्होंने अपने महत्त्वपूर्ण विचारों एवं मंगल कामनाओं से मेरा प्रोत्साहन किया है। साहित्यकार डॉ. शंकर वासिष्ठ एवं पूर्व प्राचार्य डॉ. गोविन्दराम बडोनी ने मुझे सम्मानजनक शब्दों से प्रोत्साहित किया है, एतदर्थ वे भी मेरे धन्यवाद के सुपात्र हैं।

अन्त में मैं सहधर्मिणी श्रीमती उषा शर्मा, सुपुत्रों, पुत्रवधुओं तथा समस्त ज्ञाताज्ञात आत्मीय जनों का भी धन्यवाद व्यक्त करता हूँ जिनकी प्रत्यक्ष-परोक्ष मंगल कामनाएँ मेरे लेखन कार्य में प्राप्त होती रही हैं।

विनीत

डॉ. लेखराम शर्मा

गांव धाला

डा. देवठी/सपरून-173211

जिला- सोलन (हि.प्र.)

सम्पर्क- 8219486013

अनुक्रमणिका

प्रकरण – 1

लोकव्यवहार और भारतीय दर्शनप्रणालियों में राजयोग

भारतीय सामान्य जीवन में मन की पवित्रता के लिए आचरण करना आम बात है। योगदर्शन या राजयोग की प्रक्रिया का उद्देश्य भी चित्त का शोधन करके उसका प्रकृति में विलय कर देना है। मन पर अगर नियन्त्रण नहीं है तो यही दु:ख का कारण है और अगर इस पर नियन्त्रण कर लिया जाए तो यही लौकिक सुख से परे परम सुख का कारण बन जाता है।

योगसाधना की पूर्णता होने पर मन की सत्ता नहीं रहती और योगी परम सत्तारूप हो जाता है। वह परमसत् भगवान् के प्रेम के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। भगवत्प्राप्तिरूप उद्देश्य और उसके साधन दोनों ही योग हैं। साधन भी योग और साध्य भी योग। जिस भी क्रिया से भगवत्प्राप्ति हो वह राजयोग के अन्तर्गत है। योग की हर क्रिया में मन की प्रधानता है। मन की प्रधानता के कारण योग का हर साधन राजयोग है।

योग भगवत्प्राप्ति कराने वाली क्रियाएँ हैं। इसमें संसार सागर को पार कराने वाली युक्तियाँ हैं। परमात्मा में मन को स्थिर करने से परमानन्द का अनुभव होता है। योगी अपने मन की इच्छाओं को भगवान् की इच्छाओं में मिला देता है। योग की क्रियाओं से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं परन्तु उन सिद्धियों से होने वाले लाभों के लाभ से योगी को बचकर अपने सर्वोच्च उद्देश्य परमेश्वर को प्राप्त करना चाहिए।

सच्चा योगी अपने मूलाधार स्थित अन्त:करण को जगाकर उसको सहस्रार चक्र स्थित ज्योतिर्मय भगवत्शरीर के साथ मिलाकर तथा तदाकार होकर आनन्द समाधि में मग्न हो जाता है। इससे योगी के अन्दर भगवान् का अनन्त प्रेम अभिव्यक्त होता रहता है।

मुनि पतञ्जलि द्वारा अनुशासनबद्ध किए गए योगशास्त्र का नाम राजयोग

है। समस्त योगविधाओं का लक्ष्य राजयोग या चित्त का नाश ही है। नष्ट चित्त की अवस्था के नाम कैवल्य, राजयोग, असम्प्रज्ञातयोग, उन्मनी या अमरत्व आदि हैं। राजयोग मोक्ष का दर्शन है। यह मोक्ष विद्या है। यह अपने आप में साधन भी है और साध्य भी। अनादि वासना के कारण हमारा मन बहिर्मुख है। बहिर्मुख मन को अन्तर्मुख बनाने की क्रिया का नाम ही राजयोग है। यह चित्त को चित् बनाने की एक उत्कृष्ट प्रक्रिया है। अनादिकाल से राजयोग का महत्त्व निरन्तर बना आ रहा है। योगदर्शन का भारतीय संस्कृति, वाङ्मय और दैनिक जीवन पर व्यापक और गहरा प्रभाव देखा जाता है।

भारत की वेदान्तादि समस्त दर्शनप्रणालियों ने राजयोग के महत्त्व को एक मत से स्वीकार किया है। बौद्धों के विज्ञानवाद पर इस का प्रभाव स्पष्ट है। महात्माबुद्ध और महावीर दोनों ने स्वयं योग का सहारा लिया था। अद्वैत वेदान्त की शम, दम आदि छः सम्पत्तियां राजयोग का ही अंग हैं। श्रीकृष्णकृत गीता का योग राजयोग से भिन्न नहीं है। इसके अभ्यास और वैराग्य रूप साधन राजयोग से मेल खाते हैं। ब्रह्म या परमात्मा को प्राप्त करने का प्रसंग राजयोग का ही अंग है।

योगवासिष्ठ द्वारा वर्णित मन के बन्धन और उसके मोक्ष की प्रक्रिया राजयोगानुसारी ही है। राजयोग के अष्टांग साधनों का विस्तार पुराण साहित्य में देखा जा सकता है, कालिदासकृत कुमारसंभव महाकाव्य में पार्वती माता की तपश्चर्या कुंडलिनी शक्ति की ऊर्ध्वगामी यात्रा राजयोग से पृथक् नहीं है। वैय्याकरणों का स्फोटवादरूप नादयोग राजयोग का ही एक प्रकार है। बौद्धदर्शन की शाखा महायान में मंत्रयोग का निरन्तर अभ्यास देखा जाता है।

वैदिक ऋषियों की दिव्य प्रतिभा का राज राजयोग की ऋतम्भरा प्रज्ञा या विवेक ख्याति ही रही है। वेदोक्त देवासुर संग्राम योग और भोग के अन्तर को दर्शाता है। संहिता, आरण्यक और उपनिषदों में यह प्राणविद्या के रूप में देखा जाता है। बौद्धों की वज्रयान शाखा में कुंडलिनी योग है। वैष्णव, शैव और बौद्ध दर्शनों में अष्टांग योग को स्वीकार किया गया है। पूर्वमीमांसासूत्रकार जैमिनी स्वयं एक योगी थे।

राजयोग एक चित्तशोधनप्रक्रियापरक दर्शनशास्त्र है। आयुर्वेद ने नाड़ी विज्ञान शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान के माध्यम से राजयोग का आदर किया है। उभयत्र आसनों और शरीरविज्ञान की आवश्यकता होती है। योग के चतुर्व्यूहों की दोनों

को जरूरत है। औषधि से भी चित्त का परिणाम होता है। आसनों और सङ्कल्पशक्ति से रोग निवारण विश्वविदित है। हठयोग की प्राणायाम, धौति और बस्ति आदि क्रियाएं राजयोग से ही प्रसूत हैं। व्रत, उपवास और मौनव्रतादि नियम अष्टांगयोग के ही भाग हैं।

सभी प्रकार की उपासनाविधियां चित्त द्वारा विषयसाक्षात्कार से सम्बन्धित हैं। तन्त्रशास्त्र के कुण्डलिनी शक्ति और षट्चक्र राजयोग से ही उद्भूत हैं।

ज्योतिषशास्त्र के सूर्य, चन्द्र और तारादि पिण्ड योग के समान हैं। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत आसन, प्राणायाम, जप और मुद्रादि विषय रोजयोग के समान हैं। योगियों को प्राप्त विविध प्रकार की शक्तियां राजयोगसम्मत हैं। गायत्रीध्यान की विधि इससे अलग नहीं है। भारतीय नीतिशास्त्र, पंचतन्त्र, हितापदेश और शतकत्रय राजयोग से प्रभावित हैं।

निष्कामकर्मवाद और परिणामवाद इसी की उपज है। सत्य और अहिंसा सिद्धान्त अष्टांगयोगजन्य हैं। विश्वकल्याण, विश्वबन्धुत्व, मानवता और समता की भावना इसी से निकले हैं। मनोविज्ञान का आधार भी योग ही है।

राजयोग सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि शास्त्र है। आज का विश्वस्तरीय योगदिवस इसी की देन है। इससे पाशविक शक्ति का दमन और देवशक्ति का आगमन होता है। भारतवासियों की दैनिक जीवनशैली इसी पर आधारित है। जीवन में सहिष्णुता की भावना का मूल यही है। इस प्रकार की शुभ भावनाएं हमारे सामाजिक जीवन को ऊंचा उठाती हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में योगदर्शन के कारण ही सामंजस्य स्थापित होता है। यह आपसी मतभेदों को दूर करने में सहायक होकर देश में एकता स्थापित करता है। यह स्वास्थ्य, सौन्दर्य और शान्ति का प्रतीक है। भगवान् शिव का मदनदहन चित्त के नाश को दर्शाने वाला एक रूपक है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, नचिकेता और गोकर्ण की कथाएं इसी से सम्बन्धित हैं।

राजयोग आधुनिक तनाव से मुक्ति दिलाने में सहायक है। गुरुनानक देव जी के प्राणसंगली नामक ग्रन्थ में योग का वर्णन है। कबीर और तुलसीदास के साहित्य सहित राधास्वामी सम्प्रदाय में प्रत्यक्षतः योग की प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं। गीताके टीकाकार ज्ञानेश्वर एक योगी थे। इसके अतिरिक्त भारतीय और विश्व साहित्य में शायद ही कोई व्यक्ति योग के महत्त्व के प्रति अकृतज्ञ हो।

प्राचीन अपनिषदों में यत्र-तत्र योग की प्रक्रियाओं और महत्त्व का वर्णन

मिलता है। वहीं से योग सम्बन्धी सामग्री को संजोकर मुनि पतञ्जलि ने योगदर्शनसूत्ररूप राजयोग को परिष्कृत रूप प्रदान किया। उत्तरकालीन योग से सम्बन्धित उपनिषदों में पतंजलिकृत योगदर्शन के सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपासना के रूप में प्रयोग दिखाई देता है। इनमें अनेक प्रसंग यथापूर्व लिए गए हैं और बहुत से विषय उपासकों ने अपने अनुभव में उतार कर प्रस्तुत किए हैं। अनेक सम्प्रदायों में विभक्त इन उपासकों की वर्णनशैली बहुत सरल, मधुर और विस्तारपूर्ण है जिसका निरूपण यथास्थान देखने को मिलेगा।

भारत की समस्त दर्शनप्रणालियों में योग का विशेष स्थान है। ऋग्वेद में ध्यान से चित्त की शुद्धि का वर्णन मिलता है। पातञ्जल योग या राजयोग में ध्यानादि अनेक साधन बताए गए हैं। चित्त की अंतिम अवस्था कैवल्य को अद्वैत, जीवन्मुक्ति या तुर्यावस्था कहते हैं। समस्त योग विधाओं में सर्वोत्तम योग राजयोग है। यह मोक्षविद्या है। कठादि प्राचीन उपनिषदों में वर्णित योगांग राजयोग में अष्टांगयोग के रूप में अपनाए गए हैं। प्राण और प्रणवादि अनेक योगतत्त्वों पर आधारित उपासनाएं आगे चलकर अद्वयतारकादि अर्वाचीन उपनिषदों में विस्तार से प्रतिपादित की गई हैं। उक्त उपासनाएं तत्तत् सम्प्रदायगत परम्पराओं पर आधारित हैं जबकि राजयोग उन उपासनाओं का दर्शन है। योग साधनपक्ष है जबकि राजयोग उसका दर्शनपक्ष। राजयोग वस्तुत: योग के रहस्य को प्रकट करता है।

आदिकाल से भारत में अनेक दर्शनप्रणालियों का प्रचलन रहा है। उन सभी में योग की उपयोगिता पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद में उस देव की शरण को ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है जिसके विना कोई यज्ञ सिद्ध नहीं होता। यस्मादृते न सिध्यति यज्ञ:। वह शरण केवल ईश्वर है। सांख्य दर्शन औषधिजन्य सिद्धि की भान्ति समाधिजन्य सिद्धि को भी सत्य बता रहा है–

''योग सिद्धयोऽप्यौषधादि सिद्धिवत्...।'' (5-88).

वेदान्त, न्याय और वैशेषिक दर्शन योग के महत्त्व को स्वीकारते हैं। वैशषिक सूत्र- तदा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् (9-1-12) के अनुसार समाधि की सिद्धि से अतीन्द्रिय पदार्थों का भी प्रत्यक्ष होता है। राजयोग के हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय चार सत्य बौद्ध दर्शन में आर्यसत्यों के रूप में अपनाए गए हैं। बौद्धदर्शन में राजयोग के आठ अङ्ग अष्टांगिक मार्ग कहे गए हैं। वहाँ पाँच यम पंचशील के नाम से माने गए है। योग के पाँच यमों को वहाँ अहिंसा, सूनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नाम देकर सम्यक्चरित्र के रूप में दर्शाया है। इनको

पंचमहाव्रत भी कहा गया है। मान्य डॉ. बलदेव उपाध्याय के अनुसार महावीर जैन स्वयं योगी थे। उपाध्याय के अनुसार किसी भी भारतीय दार्शनिक का योग की उपयोगिता के विषय में कोई वैमत्य नहीं है।

धम्मपद के आत्मनैव सुदान्तेन नाथं लभते सुदुर्लभम् (12-4) में योग की महत्ता स्पष्ट है। श्री हरिहरानंद आरण्य बताते हैं कि महात्मा बुद्ध ने योगाचार्य रूद्रक से योग की शिक्षा ग्रहण की थी। योगेश्वर श्री कृष्ण ने गीता के ''शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य... (6-11) में योगसाधना का स्पष्ट निरूपण किया है। इतना ही नहीं गीता को योगदर्शन का सम्मान्य ग्रन्थ ही माना जाता है। मान्य डा. नलिनी शुक्ला के अनुसार भी राजयोग भारतीय दर्शन की सभी प्रणालियों को मान्य है।

योगसन्ध्या में ''भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्'' के अनुसार सांसारिक ताप से तपे लोगों के लिए योग परमौषध है। वहीं यह भी कहा गया है कि किसी को चाहे कितना ही ज्ञान क्यों न हो वह योगसाधना के विना मुक्त नहीं हो सकता। देवताओं को भी विना योग के मोक्ष सुलभ नहीं है। वह यह भी कहती है, आत्मज्ञान से मुक्ति तो होती है पर योग का सहारा लेकर ही। ''न योगात् परतरं शिवम्'' अर्थात् योग से बढ़कर जीव के लिए कुछ भी कल्याणकारी नहीं है। योगाग्नि समस्त पापों को नष्ट कर देती है। मनुष्य केवल योग का अभ्यास करने से ही संसार सागर को पार कर सकता है ''योगाभ्यासात् परतरं नास्ति न भूतो न भविष्यति'' अर्थात् योगाभ्यास से बढ़कर कोई साधन न था, न है और न भविष्य में होगा। ''नास्ति योगसमंबलं'' कहकर तो योगसन्ध्याकार ने योग के महत्त्व को दर्शाने में कोई कसर ही नहीं छोड़ी है।

राजयोग के योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षु भी ''मुक्तिर्योगात्...'' के अनुसार केवल योग को ही मुक्ति का कारण मानते हैं। अर्थात् योग की समस्त प्रक्रियाएं राजयोग या योगदर्शन की ही सहायक है। हर प्रकार का योग उसी का पूरक है। योग एक प्रयोगात्मक विद्या है परन्तु उस विद्या के पीछे क्या सिद्धान्त है यह राजयोग ही स्पष्ट करता है।

□

प्रकरण – 2

योगसाहित्य में राजयोग

डॉ. बलदेव उपाध्याय ने 'भारतीय दर्शन' में पातञ्जलयोग को राजयोग के नाम से प्रसिद्ध बताया है। यह सभी योगों में प्रमुख है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार मनोविज्ञान से इसकी घनिष्टतावश इसको राजयोग नाम दिया गया है। ध्यान रहे– अड्यार पुस्तकालय की शास्त्री अ. महादेव द्वारा संपादित ''योगोपनिषद:'' के सन् 1920 के संस्करण को प्रस्तुत पुस्तक में विशेष आलोच्य स्थान दिया गया है। उक्त पुस्तक के पृष्ठ 416 के योग शिखोपनिषत् में राजयोग को योग का चरम लक्ष्य बताया गया है जो कि योग साहित्य में राजयोग के महत्त्व को दर्शाता है– ''मन्त्रो लयो हठो राजयोगान्ता भूमिका: क्रमात्।'' सूर्योदय पत्रिका के माध्यम से मान्य डॉ. गोपीनाथ कविराज जी ने हठयोग की पूर्णता राजयोग में बताई है। ''राजयोग: समाधिश्च... अमनस्कं तथा द्वैतम्'' हठयोग प्रदीपिका (4-4) के अनुसार राजयोग या अद्वैत योग का अन्तिम लक्ष्य है। यह हठयोग का साध्य है–

''केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते'' –(ह. यो. प्र. 1-2).

वहाँ यह भी बताया गया है कि हठयोग की क्रियाएं राजयोग के विना सिद्ध नहीं होती। उसमें चित्त की भूमिका विशेष है। योग सन्ध्या– ''विभ्राजते प्रोन्नतराज योगमारोढुम्'' में योग को राजयोग का सोपान बताया गया है।

''योगोपनिषद:'' के पृष्ठ 416 पर योगशिखोपनिषत् में ''एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते'' एक ही यह राजयोग अपने चार भेदों के साथ महायोग कहलाता है। उपरोक्त पुस्तक के पृ. 367 पर योगतत्त्वोपनिषद् में यही बात ''भिद्यते व्यवहारत:'' कहकर दर्शायी गई है। पाश्चात्य दार्शनिकों का यह आरोप मिथ्या है कि भारतीय दर्शन व्यावहारिक नहीं है। उक्त ग्रन्थ के ही पृ. 29 पर राजयोग के प्रभाव से ही जीवात्मा को मुक्ति का मिलना संभव बताया गया है। क्योंकि मुक्ति का सम्बन्ध मन से है।

□

प्रकरण – 3

योगोपनिषदों में राजयोगदर्शन

एक योगप्रेमी को यह जानना जरूरी है कि राजयोग एक दर्शन या फिलॉसॉफी है जबकि योग की प्रणाली एक उपासना या साधना। वास्तव में राजयोग योगसाधनों का विज्ञान है। उपासना व्यावहारिक होती है जबकि दर्शन उसका विज्ञान। यतये जितेन्द्रियाय शमादि षड्गुणपूर्णाय– अद्वयतारक में योग या उपासना का उपदेश केवल अधिकारी शिष्य को देने के लिए कहा गया है। वहीं ''तद्दर्शनं सदाचार्य मूलम्'' के अनुसार योगोपासना के आन्तरिक लक्ष्य को सदाचारी गुरु से प्राप्त करने के योग्य कहा गया है। ग्रन्थ के तेजोबिन्दु उपनिषद् के छठे अध्याय में ''शांकरीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्यचित्'' के अनुसार योगाभ्यास हर किसी को नहीं सिखाने के लिए कहा गया है। दर्शन इस प्रकार की गोपनीयता से मुक्त होता है। उपासना का कोई न कोई सम्प्रदाय होता है जबकि राजयोग या योगदर्शन सम्प्रदाय से मुक्त है। उसके नियम सभी योगों के लिए समान हैं। उपासना के सम्प्रदाय में सम्प्रदाय की विधि को अपनाने के लिए दर्शनोपनिषद् कहता है– ''पप्रच्छ गुरुमेकान्ते प्राञ्जलिर्विनयान्वित:'' अर्थात् शिष्य ने विनम्रतापूर्वक गुरु से प्रश्न किया। एकान्त शब्द इस बात का भी सूचक है कि योगोपसना की विधि गोपनीय होती है जबकि राजयोग में इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं है। उपासकों के अपने-अपने स्वतन्त्र अनुभव होते हैं।

संकलन के पृ. 301 पर योगोपासना के इच्छुक शिष्य को सात्विक, अन्तर्मुख और गुरुसेवक होना चाहिए। योगशिखा में ''कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद्दृढ़म्'' कहकर गुरु की शरण और उसके वचन को नौका के समान दृढ़ और तारक बताया गया है। उपासना विधि को परम्परा से चली आ रही बताते हुए पृ. 559 पर हंसोपनिषत् का कथन है कि इस उपासना परंपरा के तत्त्व को ''पार्वत्या कथितं तत्त्व।'' अर्थात् पार्वती माता ने अपने मुंह से कहा है। उसके साथ ही उन्होंने यह भी बताया था कि इसकी रक्षा धन या कोशवत् करनी चाहिए। हठयोग प्रदीपिका 1.11

में भी ''भवेद्वीर्यवती गुप्ता'' के अनुसार उपासना विधि को गोपनीय रखने से उसकी शक्ति बढ़ती है, ऐसा कहा है। वस्तुत: योगोपासना मुक्ति का साधन है और राजयोग साक्षात् मुक्ति है। उपासना का फल मुक्ति है। हठयोगप्रदीपिका 1-3 में स्पष्ट कहा है कि हठयोग का उपदेश केवल राजयोग की सिद्धि के लिए दिया जाता है। अर्थात् उपासक को चित्त या मन की अवस्थाओं का ज्ञान भी होना चाहिए। उपासना के मनोविज्ञान को जाने विना केवल उपासना से मुक्ति का होना असम्भव है।

डॉ. श्री राधा कृष्णन् ने अपने भारतीय दर्शन में प्राचीन उपनिषदों में योग के बीजों का प्राप्त होना बताया है। डा. एस. एन. दास गुप्ता तेरह प्राचीन उपनिषदों के बाद की रची गयी सभी उपनिषदों को नवीन बताते हैं। वे प्राचीन उपनिषदों की रचना 500 ई. पू. की मानते हैं जबकि बाद की उपनिषदें मुगलकाल तक लिखी जाती रही हैं। डॉ. बलदेव जी के अनुसार छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कठ, मैत्री और श्वेताश्वतर उपनिषदों में योग की विभिन्न प्रक्रियाओं का समावेश मिलता है। वहीं उनका यह भी कथन है कि बाद में रची गयी योग की उपनिषदें केवल योग से सम्बन्धित हैं। इन्हीं उपनिषदों में राजयोग के सिद्धान्तों का उपासना के रूप में विस्तार किया गया मिलता है। वस्तुत: प्राचीन उपनिषदों में राजयोग पूर्णता को प्राप्त हुआ नहीं दिखाई देता। बाद में राजयोगाधारित योग से सम्बन्धित उपनिषदों में राजयोग अपनी परिपूर्णावस्था को प्राप्त हुआ दिखाई देता है।

डॉ. राम शंकर भट्टाचार्य के अनुसार जब योगविद्या प्राय: लुप्त होने की ओर जा रही थी तो उस समय महर्षि पतंजलि ने प्राचीन उपनिषदों से सामग्री लेकर योगसूत्रों की की रचना की। इससे स्पष्ट है कि पहले की उपनिषदें, राजयोग की माताएं हैं और उत्तरकालीन योगोपनिषदें राजयोग की बेटियां। मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित हरिहरानन्द आरण्य के 'पातञ्जलयोगदर्शन' के 1974 के संस्करण पृ. 14 पर श्वेताश्वतरोपनिषत् को प्राचीन योगसम्प्रदाय का ग्रन्थ माना गया है। इसमें योग के साधनों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। जैसे ''त्रिरून्नतं स्थाप्य समं शरीरम्'' श्वेता. 2-8 तथा अन्य अनेक योग प्रक्रियाओं के प्रसंग बड़े हृदयग्राही हैं। वहाँ योगाभ्यास के लिए स्थान कैसा हो यह भी विचार किया गया है। योग की विधियों के साथ विवेकख्याति को कैवल्य का कारण बताया गया है। उसमें योग की सिद्धियों का भी वर्णन है।

यहाँ इतना जानना जरूरी होगा कि योग की साम्प्रदायिक या व्यावहारिक विधियां जब लुप्त होने को थी तो उसकी रक्षा का भार मुनि पतंजलि ने सम्भाला और

उसको सूत्र या संक्षिप्त रूप देकर विश्वविख्यात पातञ्जलयोगदर्शन के रूप में अगली पीढ़ी के लाभ के लिए प्रस्तुत किया। योगदर्शन की इस सूत्रशैली ने योगविद्या को लुप्त होने से वास्तव में बचाया भी। बाद में जब समाज को योगविद्या की जरूरत महसूस हुई तो उन योग सूत्रों की योगविद्या विशेषज्ञों ने समयोपयोगी व्याख्या करके विभिन्न योगसम्प्रदाय स्थापित किए जिनके ग्रंथों का आज व्याक प्रचार और प्रसार है। उन योगसम्प्रदायों द्वारा ही रची गयी बाद की नयी उपनिषदों में हमको योगोपासना सम्बन्धी विस्तृत और रोचक सामग्री प्राप्त होती है। आजकल स्वामी रामदेव जी ने तो अपने योगशिक्षा अभियान का नाम ही पतंजलि को समर्पित किया है।

प्राचीन उपनिषद् (कठ. 2-3-10) में योगसाधनविधि के साथ कहा गया है कि जब बुद्धि चेष्टा रहित हो जाती है उस अवस्था को परम गति या मोक्ष कहते हैं। यहाँ ''एतद्धयेवाक्षरं परम्'' वचन द्वारा इसे ईश्वर या प्रणव बताया है। वहीं ''सा काष्ठा सा परमा गतिः'' (1-3-11) के अनुसार वह पुरुष विशेष की अन्तिम परमा अवस्था है। यह अवस्था तब आती है जब ''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा ह्यस्य हृदि श्रृताः'' तथा वहीं (2-3-14) के अनुसार जब उपासक के हृदय की सभी इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार पतंजलि ने प्राचीन उपनिषदों से योग के बिखरे हुए सिद्धान्तों और विचारों को संकलित करके उनको अपने रचे हुए सूत्रों में बांधा है और उनको अनुशासित किया है। जो प्राचीन महायोग केवल पातञ्जलसूत्रों के रूप में रक्षित किया गया था उसमें से अपने अपने काम के सिद्धान्तों को लेकर अनेक उपासना सम्प्रदायों का उद्‌भव हुआ। आज उन्हीं सूत्रों का विस्तार योगनिषदों के रूप में हमारे समक्ष है। प्राचीन उपनिषदों का योग दर्शनरूप को प्राप्त होकर फिर से योगोपनिषदों में महायोग का रूप लेने लगा जिसमें योग का व्यवहार और दर्शन दोनों फिर से सम्मिलित होने लगे। ''योगोपनिषदः'' के (पृ. 367 व 416) पर योगशिक्षा में- योगो हि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः कहकर एक ही महायोग के मन्त्र, लय, हठ और राजयोग नाम से चार भेद दर्शाए गए हैं। योग के ये भेद राजयोग से ही विस्तार पाकर योगोपनिषदों में प्रकट हुए हैं। इस तरह राजयोग प्राचीन और नयी उपनिषदों के बीच एक योजक कड़ी का काम करता हुआ नजर आता है। इसी राजयोग का विकास को प्राप्त हुआ रूप हमको उत्तरकालीन योग से सम्बन्धित ''योगोपनिषदः'' में मिलता है जो कि प्रस्तुत पुस्तक के लिए आलोच्य आधार ग्रन्थ है।

□

प्रकरण – 4

राजयोग से योगोपनिषदों का उदय

राजयोग से विकसित विभिन्न उपासनाओं में अनेक प्रकार की सिद्धियों का होना बताया गया है। योगोपनिषदों के पूर्वोक्त संकलन के (पृ. 271) पर ''धारणासु च योग्यता मनसः'' के अनुसार प्राणायाम से योग की धारणाओं के लिए मन की योग्यता प्राप्त होती है। यही बात पूर्ववर्ती पतंजलि ''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'' (सू. 2-32) में कह चुके हैं कि ज्ञान के आवरण रूप दोष प्राणायाम से जल जाते हैं। अमृतनाद ''प्राणायामैर्दहेद्दोषान्...'' में कहता है कि प्राणायाम करके अपने मन के दोषों को जलाना चाहिए। योग सूत्र 1-23 के कथनानुसार ईश्वर प्रणिधान या ईश्वर की भक्ति भी कैवल्य का एक साधन है- ''ईश्वर प्रणिधानाद्वा''। उसको हम भक्तियोग कह सकते हैं। योगोपनिषत् में इसी ईश्वर के सगुण और निर्गुण रूपों का विस्तार मिलता है। विभिन्न उपासनाओं की तरह योगोपनिषदों में शब्दोपासना या नादयोग का विकास भी राजयोग से ही हुआ है। योग सूत्र 3-17 के अनुसार शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनों के संकररूप में संयम करने से पशु-पक्षी आदि समस्त प्राणियों की भाषा का ज्ञान होता है। यह शब्दोपासना या नादयोग का ही रूप है। उपासनाओं में प्रणवजप या भगवन्नामजप योग सूत्रों से ही आया है। इसी को नादानुसन्धान, शब्दब्रह्म, मन्त्रोपासना और हंसविद्या आदि नामों से कहा गया है। राजयोग के व्याख्याकार विज्ञानभिक्षु ने जिस कुंडलिनी नाड़ी को सर्पाकार बताया है उसी नाड़ी को त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् में नाग नाम से कहा गया है- ''नागाख्या महोज्ज्वला'' (पृ. 134) तथा अद्वयतारक में- ''मृणालसूत्रवत् सूक्ष्माङ्गी'' बताया गया है। स्पष्ट है कि कुंडलिनी की उपासना का विस्तार यहाँ राजयोग से ही हुआ है अतः हम निःसंकोच कह सकते हैं कि नवीन योगोपनिषदों के विकास का आधार राजयोग ही हैं।

□

प्रकरण – 5

योगोपनिषदों में योग, प्रकृति, चित्त और वृत्तियाँ

योगापनिषदों में योग, चित्त और वृत्ति रूप तत्वों का विकास राजयोग से ही हुआ है। वृत्तियों के सहित चित्त के नाश को योग कहते हैं। वृत्तियों के सहित चित्त के नाश को योग कहते हैं। चित्त को कैवल्यावस्था प्राप्त होने पर योगी पुन: जन्म और मरण के बंधन में नहीं पड़ते। मैं पुरुष मन हूँ, यही अज्ञात बन्धन या मन मुक्ति की अवस्था में नष्ट हो जाता है। नष्ट चित्त संस्कार या बीज से रहित हो जाता है। बीज या कारण नहीं तो उसका काम भी नहीं। चित्त के लय, अमनस्क और परमपद नाम उसके नाश की अवस्था के ही सूचक हैं। चित्त या मन जड होने से नाशवान् है। चित्त प्रकृति का पहला परिणाम है। चित्त के जीवित रहने तक ही उसकी वृत्तियाँ और संस्कार रहते हैं। प्रकृति की तरह उससे उत्पन्न चित्त भी सत्त्वादि तीन गुणों वाला है। चित्त और वृत्तियाँ पुरुष या जीवात्मा की अशुद्धियां हैं। यही चित्त क्लेश या दु:ख का मूल कारण है। उपासना के अन्त में चित्त के सत्त्वगुण को भी नष्ट करना पड़ता है।

वृत्तियों का आधार चित्त है। चित्त स्वयं त्रिगुणजन्य होने से यह भी त्रिगुणमय वृत्तियों को पैदा करता है। वृत्तियाँ पैदा करना चित्त का कार्य है। वृत्ति रूप सारा संसार चित्त का ही परिणाम है। देहोऽहं या मैं शरीर हूँ यह विपर्यय वृत्ति है। सत्त्वगुणप्रधान चित्त स्वयं पहली और अन्तिम वृत्ति है। संकल्पादि वृत्तियाँ प्रकृति के अवान्तर परिणाम हैं। प्रकृति परिणामी है। प्रकृति का पहला परिणाम होने पर भी अन्त में भी चित्त का ही निरोध होता है। विरुद्ध या नष्ट चित्त पुरुष के लिए फिर परिणाम पैदा नहीं करता। संसार का मूल कारण शशविषाणवत् मिथ्या विपर्यय वृत्ति ही है। अनात्म पदार्थ में आत्मबुद्धि का नाम ही विपर्यय वृत्ति है। दु:खमय चित्त के समान उनकी वृत्तियाँ भी दु:खमय हैं। जैसी माई वैसी जाई।

सत्त्वगुणमय विवेकख्याति रूप सिद्धि भी पुरुषविरोधी गुणधर्म वाली होने से निरोधव्य है। विवेकख्याति योग की सर्वोच्च सिद्धि है। प्राय: सभी योगोपनिषदों में चित्त और उसकी वृत्तियों का निरोध करने का उपदेश दिया गया है।

□

प्रकरण – 6

चित्त या मन का नाश ही योग

''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'' (यो. सू. 1-2) के अनुसार चित्त या मन की समस्त वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। ''तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्'' (यो. सू. 1-3) के अनुसार उस अवस्था में पुरुष या जीवात्मा अपने मूल शुद्ध और निर्मल स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अशुद्धावस्था में ''वृत्ति सारूप्यमितरत्र'' के अनुसार चित्त वृत्ति के आकार को प्राप्त हुआ रहता है। अर्थात् जैसी वृत्ति वैसा मन। उसका निरोध या नाश योग के अभ्यास और वैराग्य से ही संभव है- ''अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध:'' (योगसूत्र 2-22)। ''कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्'' के अनुसार चित्त केवल कृतार्थ या मुक्त पुरुष विशेष के प्रति ही नष्ट होता है अन्य साधारण अशुद्ध चित्त वालों के लिए नहीं। ज्ञात रहे कि चित्त या मन स्वयं भी एक वृत्ति ही है। चित्त की पहली और अन्तिम वृत्ति। यह मन का अहंकार है। यो. सू. 1-5 के व्यास भाष्य में ''प्रलयं वा गच्छतीति'' के अनुसार उस चित्त का उसके कारण प्रकृति में प्रलय होना बताया गया है। वह लीन मन अमन हो जाता है।

बुद्धि और पुरुष का संयोग ही तो चित्त कहलाता है और उस संयोग रूप मन का नाश ही योग है- ''तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशे: कैवल्यम्'' (यो. सू. 2-25), व्यास भाष्य (यो. सू. 4-6) में भी कहा है- ''चित्तानि प्रतिपुरुषं प्रवर्तन्ते'' अर्थात् प्रत्येक पुरुष का अपना अपना पृथक् पृथक् चित्त है। वह मुक्त पुरुष के लिए नष्ट होता है अमुक्त के लिए नहीं। तत्त्ववैशारदी में ''पुनरपि संसारे विशन्ति''- (यो. सू. 2-29) के अनुसार जिन पुरुषों का चित्त नष्ट नहीं होता वे संसार में जन्म-मरण के चक्कर को प्राप्त होते ही रहते हैं।

बन्धन और मुक्ति चित्त के धर्म हैं पुरुष या जीवात्मा के नहीं। यह पुरुष का दोष या मल है कि वह चित्त के धर्मों को अपना मानता है। (यो. सू. 2-18) के व्यास भाष्य में स्पष्ट कहा है कि बन्धन और मुक्ति केवल बुद्धि या चित्त के

होते हैं– ''बन्धमोक्षौ बुद्धेरेव''। चित्त की असम्प्रज्ञातावस्था में चित्त के न रहने से कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता, यह चित्त के नाश से ही सम्भव है अत: चित्त की नष्टावस्था ही योग है।

योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षु के मत में ''सर्वोऽप्यत्यन्तं विलयमतो निर्बीज:'' (यो. सू. 1-51) के अनुसार नष्ट चित्त में कोई बीज या संस्कार शेष नहीं रहता। भोजवृत्तिकार भी (यो. सू. 1-18) में ''असम्प्रज्ञातो निर्बीज समाधि:'' के अनुसार इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। (यो. सू. 1-1) ''सर्ववृत्तिनिरोधे असम्प्राज्ञात: समाधि:'' के भाष्य में व्यास जी भी दोहराते हैं कि उस अवस्था में चित्त भी नहीं रहता जो कि स्वयं भी एक वृत्ति रूप ही है। अमृत बिन्दु 2-26 के अनुसार ''मुक्त्यै निर्विषयं मन:'' में मुक्ति के लिए मन का विषय रहित होना बताया है जो कि चित्त का नाश ही है क्योंकि चित्त विषय या वृत्तियों पर ही तो जीवित रहता है। इसी उपनिषद् के ''यदा यात्यात्मनोऽभावं'' 4-27 में मुक्ति में चित्त का अभाव होना बताया है जोकि चित्त का नाश ही है। निरूद्ध मन अमन हो जाता है।

तेजोबिन्दु का ''न मे चित्तं न मे बुद्धि:'' वचन मुक्तावस्था में चित्त की नष्टावस्था को ही दर्शाता है। उपनिषत् के (पृ. 99) पर ''मन एव महद् दु:खं'' में मन या चित्त को बड़ा दु:ख बताकर तथा दर्शनोपनिषत् ''समाधिं भवनाशनं'' आदि प्रसंगों में स्पष्ट करता है कि यह मन संसार है और इसका नाश करने से ही योग सिद्ध होता है। मन दु:ख का कारण है जबकि अमन आनन्द का कारण। नाद बिन्दु ''मृतवत्तिष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशय:'' (पृ. 51) पर कहता है कि मुक्त योगी पुरुष मृतक के समान शान्त होता है, इससे भी चित्त का नाश होना स्पष्ट है। चेष्टा रहित चित्त नहीं रहता। वह चित् हो जाता है। ब्रह्म विद्योपेनिषत् में ''पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत्'' (पृ. 38) के अनुसार जिस विवेक ख्याति रूप सिद्धि से चित्त के समस्त दोष नष्ट होते हैं अन्त में उस विवेक ख्याति का भी परित्याग करना चाहिए। चित्त का परित्याग ही चित्त का नाश है। योगोपनिषत् के (पृ. 279) में मण्डलब्राह्मण भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। वहीं (पृ. 295) पर ''मनोनाशं भवति तदेवामनस्कम्'' के अनुसार अमनस्क योग या मुक्ति में मन का नाश हो जाता है। चित्त एक दोष है जिसके छूटने पर''सजीव: शिव उच्यते'' -योगशिखा के अनुसार वह पुरुष शिव या स्वरूपावस्था को प्राप्त हो जाता है। योगोपनिषत् (पृ. 401) के ''ततो नश्यति संसार:'' वचन के अनुसार भी चित्त रूपी संसार का नष्ट होना सिद्ध है। योगशिखा के (पृ. 435 और 453)

पर ''यत्रोपरमते चित्तं'' और ''तन्मनो विलयं याति'' पद यद्यपि निरोध और विलय शब्द का प्रयोग कर रहे हैं पर जब उस अवस्था में मन रहता ही नहीं तो उस अवस्था में इन शब्दों का चित्त का नाश रूप अर्थ ही भासता है। अत: योग की साधना से चित्त को जो नष्टावस्था प्राप्त होती है वही कैवल्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजयोग में सूत्र या संक्षिप्त रूप से वर्णित चित्त या मन के नाश को ही योगोपनिषदों में स्पष्ट व व्यापक रूप में दर्शाया गया है।

□

प्रकरण – 7

चित्त–प्रकृति का पहला परिणाम

वाचस्पति मिश्र तत्त्व वैयशारदी में कहते हैं– ''चित्तरूपेण परिणतं सत्त्वं चित्त तत्त्वम्'' (यो. सूत्र 1-2) अर्थात् प्रकृति का सत्त्वगुण चित्तरूप में परिणत होता है। स्पष्ट है कि प्रकृति का पहला परिणाम चित्त है। इसको अधिक स्पष्ट करते हुए ''बुद्धिरूपेण परिणताः गुणाः'' (यो. सू. 2-15) में चित्त को गुणों या प्रकृति का परिणाम बताते हैं। तीन गुण ही प्रकृति है। योग में चित्त, बुद्धि और अन्तःकरण समानार्थक हैं। प्रकृति के पहले परिणाम चित्त की अपेक्षा उसके अवान्तर वृत्तिरूप परिणामों में रज व तम गुणों की प्रधानता रहती है। ये परिणाम चित्त की अशुद्धियां, मल या आवरण कहलाते हैं।

''इन्द्रियवृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते पुरुषस्तद्रूपाकार इव'' -भोजवृत्ति सूत्र 1-4 के अनुसार जो तत्त्व इन्द्रियों के द्वारा विषयाकार होने पर निर्मल पुरुष में उसी आकार में भासने लगे वही चित्त है। वे वहीं पुनः कहते हैं– ''जलतरंगेषु चलत्सु चञ्चलमिव प्रतिभासते, तच्चित्तम्'' अर्थात् जो तत्त्व जल में चञ्चल चन्द्रमा के भासने के समान चञ्चल भासता है वह चित्त है। यहाँ चित्त का विषयाकार होकर भासना ही प्रकृति का पहला परिणाम है। यह मन ही समस्त दोषों का बीज है। ''योगांगानुष्ठानादशुद्धि क्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः (यो. सू. 2-28) के अनुसार यमादि योगांगों का अनुष्ठान करने से पुरुष के चित्त की अशुद्धियां दूर होकर विवेकख्यातिपर्यन्त ज्ञान प्रकाशित हो जाता है। ज्ञानरूप विवेकख्याति चित्त की अन्तिम अशुद्धि या प्रकृति का पहला परिणाम है। समस्त योगप्रक्रियाओं का प्रयोजन उस परिणाम तक पहुँचाता है जिस से वृत्तिरूप अवान्तर परिणाम पैदा हुए थे। व्या. भा.- ''विपरीता विवेकख्यातिरिति'' सूत्र 1-2 में इस विशेष प्रकार के ज्ञान को भी योग के अंतिम लक्ष्य में बाधक बताया गया है। चित्त तीन गुणों से पैदा होने के कारण गुणों की विषमता से निरन्तर विचित्र परिणामों को प्राप्त हुआ करता है। योग वार्तिक में- ''अन्तःकरणस्य वृत्तिमात्रेण

चतुर्धा'' (सू. 1-2) में एक ही अन्त:करण के मन, बुद्धि अहंकार और चित्त नाम वृत्ति या कार्य भेद से बताए गए हैं। चारों की अपनी अपनी वृत्तियाँ या कार्य हैं। अमृतनाद (पृ. 27) पर चित्त की अभावावस्था को योग या मुक्ति कहा गया है। तेजोबिन्दु (पृ. 98 पर) बताता है– ''देहोऽहमिति संकल्पं तदन्त:करणं स्मृतम्''– ''मैं शरीर हूँ'' यह संकल्प ही चित्त या अन्त:करण है। इसी प्रकृति के इसी एक परिणाम से आगे चलकर अनेक अन्य परिणाम पैदा होते हैं। (योग शिखा पृ. 459) ''चित्तमूलं हि संसार:'' चित्त या मन के कारण ही संसार है, ऐसा मानता है। 298 पृष्ठ पर मण्डल ब्राह्मण भी ''सर्वं चित्त गोचरम्'' कहने से इसी वचन का पोषक है। ऊपरोक्त सभी वचन जो कि चित्त के प्रकृति के पहले परिणाम होने के साधक हैं उत्तरकाल में राजयोग से ही विकास को प्राप्त हुए हैं।

□

प्रकरण – 8

उपासनाओं का लक्ष्य–चित्त का नाश

चित्त उन समस्त वृत्तियों का पिता या कारण है जो उससे उत्पन्न हुई हैं। वृत्तियाँ चित्त की अशुद्धियां हैं और चित्त पुरुष की अशुद्धि है। पहले वृत्तियों का नाश करके अंत में चित्त का नाश किया जाता है। शुद्धतम चित्त या विवेकख्याति का परवैराग्यरूप ज्ञान से नाश होता है। चित्त के शेष रहने तक पुरुष की वृत्तियों के साथ समानरूपता बनी रहती है। कैवल्य अथवा पुरुष की स्वरूपावस्था की प्राप्ति के लिए चित्त का नाश करना अनिवार्य है। अत: चित्त हेय या नाश करने योग्य है।

व्यास एवं वाचस्पति मिश्र ''त्रिगुणा बुद्धिरिति'' (यो. सू. 2-20) के अनुसार चित्त को त्रिगुणमय बताते हैं। सत्त्वगुणप्रधान होने पर भी उसमें रज और तम भी गौणरूप से मिले रहते हैं। यही कारण है कि पतंजलि ने ''परिणामतापसंस्कार दु:खैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिन '' (सू. 2-15) के अनुसार चित्त में परिणाम, ताप और संस्कारादि के कारण विवेकी के लिए सब कुछ दु:ख है। चित्त की सुखाकार वृत्ति के साथ रज और तम का मिश्रण रहने से प्रकृति और उसके कार्य विषयरूप सुखादि सभी दु:ख रूप ही हैं। दु:खमय चित्त को अपने पास कौन बनाए रखना चाहेगा? अत: चित्त नाश करने योग्य है। व्यास जी के अनुसार ''विषयसुखमविद्येति'' अर्थात् विषयों से प्राप्त होने वाला सुख अविद्या है और वही समस्त क्लेशों का मूल कारण है। अत: अविद्या का आश्रय चित्त नाश करने के योग्य है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार तीनों गुण परस्परानुग्रहवश सुख-दु:ख रूप वृत्तियों को पैदा करते रहते हैं। व्यास के ''दु:खबहुल: संसारो हेय:'' (सूत्रभााष्य 2-13) में भी संसार या चित्त को हेय बताया गया है। वराहोपनिषत्कार भी दु:खहुल संसार के कारण चित्त को हेय बता रहा है। व्यास के अनुसार प्रकृति-पुरुष के संयोग से उत्पन्न चित्त नाश करने के योग्य है- ''प्रधानपुरुषयो: संयोगो हेयहेतु:'' (यो. सू. 2-15).

अमृतबिन्दु का कहना है कि काम या इच्छा वाला चित्त अशुद्ध और काम या इच्छा रहित चित्त शुद्ध होता है– ''अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं काम विवर्जितम्''– पृ. 26, अत: अशुद्ध चित्त का नाश करना जरूरी है। मनुष्य के बन्धन या दु:ख का कारण यह मन या चित्त ही तो है। मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:– अमृत बिन्दु (पृ. 26)। इन्द्रियां और मन आदि सभी खरगोश के सींग की तरह असत्य होने से हेय हैं– इन्द्रियाणि मनश्चैव.. सर्वं शशविषाणवत्– तेजोबिन्दु (पृ. 80)। दर्शनोपनिषत् के अनुसार दुष्ट चित्त तीर्थस्थान से शुद्ध नहीं होता– ''तीर्थस्नानैर्न शुध्यति'' पृ. 168. योग कुंडली के अनुसार समस्त वासनाओं का कारण होने से चित्त नाश करने योग्य है।

चित्त अपने प्राणापानादि कार्य द्वारा पुरुष को आकर्षित करता है, योग चूड़ामणि का यह कथन है। ''उत्पत्तिस्थितिकारणं''– योग कुंडली (पृ. 330) के अनुसार चित्त जन्म रूप बन्धन का कारण है, अत: हेय है। योग का लक्ष्य बन्धन मुक्त होकर अजन्मा होना है। वहीं पृ. 397 पर लिखा है– देहावसानसमये चित्ते यद्यद् विभावयेत् तत्तदेव भवेज्जीव:। अर्थात् जीवन के अन्तकाल में पुरुष अपने चित्त में जिस वस्तु का भी ध्यान करता है उसी के अनुसार वह अगला जन्म ग्रहण करता है। यही ध्यान पुरुष के जन्म और बन्धन का कारण बनता है। अत: जन्म रूप दु:ख का कारण चित्त हेय है। राजयोग के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। वृत्तियों का आधार चित्त भी एक वृत्ति है अत: वह भी नाश करने योग्य है। योगशिखा के अनुसार चित्त के जीवित रहने तक संसार रूप दु:ख बना रहता है। वराह के अनुसार चित्त के चार भेदों मन, बुद्धि, अहंकार और उनकी क्रमश: संकल्प, अध्यवसाय, अभिमान और अवधारणा नाम की चारों वृत्तियाँ या कार्य निरोध करने योग्य हैं– सर्वा वृत्तयो निरोधव्या: पृ. 43. वराहानुसार ''मनस्श्चैव चञ्चलत्वं स्वभावत:'' (पृ. 483) अर्थात् मन स्वभाव से ही चञ्चल है जो कि योग या मोक्ष में बाधक है। तेजोबिन्दु– ''अनात्मेति मन:'' पृष्ठ 88 के अनुसार मन के अनात्म पदार्थ होने से भी वह नाश करने योग्य है। इस प्रकार चित्त की हेयता को दर्शाने में योगोपनिषदें राजयोग का ही अनुसरण करती हैं।

चित्त त्रिगुणमय होने से परिणामी है। परिणामी चित्त का परिणाम उसकी वृत्तियां हैं। विज्ञानभिक्षु– ''सुवर्णस्येव प्रतिमाऽऽदिवत्'' (यो. वा.–यो. सू. 1–11) के अनुसार सोने की मूर्तियों आदि के सोने के परिणाम के समान प्रमाणादि वृत्तियाँ भी चित्त द्रव्य की परिणाम हैं। वे वृत्ति को बुद्धि का प्रचार भी कहते हैं। उनको

प्रदीपशिखावत् भी बताया गया है। उन्होंने वृत्ति को बुद्धि या चित्त का अन्य नई आकारता को प्राप्त होना बताया है– ''बुद्धेरेवाकारान्तरम्''। जैसे– मैं घट को जानता हूं, यह बुद्धि का ही नया आकार है। चित्त अपने निर्वाह के लिए वृत्तिरूप परिणामों को पैदा करता है। प्रमाणादि व्यापारै: चित्तं जीवति– (सूत्र वार्तिक 1-5) अर्थात् प्रमाणादि वृत्तियाँ चित्त का जीवनाधार हैं। मन का जीवन उसकी अपनी वृत्तियों पर निर्भर है।

अमृत बिन्दु ने काम या इच्छा वृत्ति को मन की अशुद्धि बताया है जो कि चित्त की परिणामस्वरूप है। तेजोबिन्दु चित्त की वृत्तियों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहता है–

दृश्यत्वं च दृग्रूपं सर्वं शशविषणवत्।।
भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कारश्च तेजश्च सोऽहं भुवनमण्डलम्।।
यमाद्याष्टाङ्गयोगं च गमनागमनात्मकम्।।
आदिमध्यान्तराङ्गं च ग्राह्यं त्याज्यं हरि: शिव:।
सर्वोपनिषदां भावं सर्वं शशविषाणवत्। (पृ. 75 से 97).
ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्। (पृ. 56).

दृश्य, नेत्र, भूमि, जल, हवा, आकाश, आग, मन, बुद्धि, अहङ्कार, तेज, सोऽहं, भुवमण्डल, यम, अष्टांयोग, गमन, आगमन, आदि, मध्य, अन्तरङ्गयोग, हरि और ब्रह्म आदि असंख्य वृत्तियों के साथ समस्त उपनिषदों के भाव शशविषाणवत् वस्तुशून्य वृत्तियाँ हैं। ये सब चित्त के परिणाम और विकल्प वृत्तियाँ हैं जिनको योगवार्तिककार सूत्र 1-9 में ''खपुष्पशशश्रृंग प्रत्यया अपि विकल्पमध्ये प्रवेशनीया:'' से इनकी वस्तुशून्यता को स्पष्ट कर रहे हैं। चित्तजन्य वृत्तियाँ चित्त से भिन्न नहीं हैं। देह, पदार्थ और अहं का पुरुष के साथ एकीकरण ही चित्त है। (योगसूत्र 1-8) ''विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्'' के अनुसार इस प्रकार का एकीकरण वस्तु शून्य मिथ्याज्ञान हैं। यह मिथ्याज्ञान प्रमाण से बाधित होता है– ''यत: प्रमाणेन बाध्यते (व्या. भा. सू. 1-8)। चित्त स्वयं मिथ्याज्ञान है तो उससे जन्य अन्य वृत्तियाँ भी स्वभावत: मिथ्याज्ञान होंगी ही।

तेजोबिन्दु वृत्तियों के नाम गिनाता है– ''कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदु:खं... मानसं सौम्य विद्धि'' (पृ. 97)। मानसं शब्द से स्पष्ट है कि ये सभी वृत्तियाँ मनोजन्य हैं। व्यास भाष्य सू. 3-13 परमार्थतस्त्वेक एव परिणाम: के अनुसार वस्तुत: परिणाम

तो एक ही है जो सभी विशेषों के अन्दर अनुस्यूत या गुथा हुआ रहता है। एक ही चित्त की परिणाम हैं तज्जन्य समस्त वृत्तियाँ। नास्ति नास्ति जगत्सर्वं, गुरुशिष्यादिकं न हि-तेजोबिन्दु पृ. 100 अर्थात् संसार की समस्त वस्तुएं गुरु-शिष्यादि यथार्थत: नहीं हैं।

इस प्रकार राजयोग में जो ''देहोऽहं'' रूप प्रकृति-पुरुष का संयोग या चित्त है उससे उत्पन्न असंख्य वृत्तियों के नाम योगोपनिषदों ने गिनाए हैं।

□

प्रकरण – 9

चित्त भी एक वृत्ति

चित्त स्वयं भी एक वृत्ति है। अगर ऐसा न होता तो सूत्रकार बताते कि– तदा द्रष्टु: चित्ते अवस्थानम्। परन्तु उन्होंने योगावस्था में स्वरूपेऽवस्थानम् कहा है। इससे स्पष्ट है कि उस अवस्था में चित्त नहीं रहता अत: वृत्तियों के साथ उसका निरोध करना जरूरी है। समस्त वृत्तियों के निरोध कर देने पर अन्त में चित्त रूप वृत्ति ही शेष रह जाती है। व्या. भा. सूत्र 3-13- धर्मिस्वरूपमात्रो हि धर्म: के अनुसार चित्त के वृत्ति रूप धर्मों का स्वरूप धर्मी का चित्त ही है। सूत्र 2-11 के अनुसार- सर्वार्थताचित्त धर्म: एकाग्रतापि चित्त धर्म: के अनुसार भी वे सभी धर्मों को चित्त के धर्म कहते हैं। तेजोबिन्दु द्वारा मन को शशविषाणवत् मिथ्या कहने से भी मन का वृत्तित्व सिद्ध होता है। अत: समस्त वृत्तियों का जनक चित्त स्वयं भी एक वृत्ति है। जब हम चित्तवृत्ति निरोध की बात करते हैं तो समझना चाहिए कि वृत्ति का कारण चित्त भी उनके साथ ही निरोधव्य या नाश करने योग्य है, यही राजयोग का अभिप्राय है।

□

प्रकरण – 10

चित्त या संसार की सत्ता का मूल कारण विपर्यय वृत्ति

पतंजलि के सूत्र 1–5 के अनुसार वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं। विज्ञानभिक्षु के अनुसार ये समस्त वृत्तियाँ त्रिगुणात्मिका होने से दु:खदायक ही हैं। सू. 1–8 के भाष्य में व्यास कहते हें कि ये पंचविध क्लेश चित्तमलप्रसङ्गेनाभिधास्यन्ते अर्थात् ये चित्त के मल या आवरण हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पाँच में से पहला क्लेश अविद्या है। सूत्र 1–8 के योगवार्तिक के मिथ्याज्ञानमिति लक्षणम् के अनुसार अविद्या का लक्षण मिथ्या ज्ञान है। संसारानर्थ बीजं सा अर्थात् अविद्याक्लेश संसाररूप अनर्थ का मूल कारण है। सूत्र 2–3 के भाष्य में व्यास–क्लेश इति पंच विपर्यया: के अनुसार क्लेशों को विपर्यय या मिथ्या ज्ञान बताते हैं जो कि संसार के अस्तित्व का मूल कारण हैं। वाचस्पति मिश्र की भी यही राय है। क्लेशा: अविद्याभेदा:। पाँच क्लेश अविद्या के ही भेद हैं। योगसूत्र 2–5 के अनुसार अनित्य, अशुचि, दु:खमय और अनात्म पदार्थों में नित्यता, शुचित्व, सुख और आत्मभावना करना अविद्या है। वाचस्पति के अनुसार– विद्याविरुद्धं विपर्ययज्ञानमविद्या– अर्थात् विद्या के विरोधी विपर्ययज्ञान को अविद्या कहते हैं। इसी को आगे बढ़ाते हुए अद्वयतारक कहता है– जीवेश्वरौ मायिकौ अर्थात् यहाँ तक कि जीव और ईश्वर भी मायिक या मिथ्या हैं। तेजो बिन्दु पृ. 100 पर नास्ति नास्ति जगत्सर्वम्, वराह पृ. 489 अहंकार सम्बन्धादेव संसार आत्मन:, योगशिखा पृ. 398, योग चूड़ामणि पृ. 342 और अमृतनाद पृ. 27 पर विपर्यय वृत्ति या अविद्या को संसार की सत्ता का मूल कारण दर्शा रहे हैं जो कि राजयोग के सर्वथा अनुरूप ही है।

□

प्रकरण – 11

चित्त के नाश की प्रक्रिया

राजयोग या महायोग में चित्त के मलों को दूर करने के लिए योगसाधनों की आवश्यकता होती है। अचञ्चल चित्त वालों के लिए अभ्यास और वैराग्यरूप साधन बताए गए हैं। विवेक ख्याति को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का नाम अभ्यास है। इसमें विषय का ध्यान किया जाता है। ज्ञान की पराकाष्ठा का नाम वैराग्य है। इसमें सिद्धि के प्रति नित्यता का भाव होता है। ईश्वर प्रणिधान स्वतंत्र रूप से योग का साधन है, इसमें ईश्वर का ध्यान किया जाता है। ईश्वर समस्त चराचर जगत् का मूल कारण है। प्रणव या ओङ्कार ईश्वर का नाम है और उसके जप से मुक्ति का लाभ होता है। ओंकार रूप ईश्वर का निवास हृदय में है। इसकी तीन मात्राएं अपरा परन्तु आधी मात्रा परा बताई गई है। कहीं कहीं आधी मात्रा को पूरी मात्रा कहा गया है। प्रणवोपासना को ही नादयोग या नादानुसंधान कहते हैं। नाद या ओंकार का श्रवण या ध्यान सुषुम्ना नाड़ी में होता है। हंसयोग भी यही है। यही अजपाजप, अजपा गायत्री या लययोग कहलाता है। प्रणव में सत्वादि तीनों गुण विद्यामान हैं। यह विश्व के समस्त मन्त्रों का मूल है और समस्त वाङ्मय का मूलाधार है। यही शब्दब्रह्म या परमज्योति है। यही संगीत विद्या का स्रोत है। शुद्ध स्फटिकवत् निर्मल इसका रूप है। प्रणव ही नाद, बिन्दु और चित्त है। यह आधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक सभी चक्रों में निवास करता है जहाँ सहस्रार में जाकर ही शक्ति का शिव से मिलन होता है।

चञ्चल चित्त वालों के लिए क्रियायोग रूप साधन उपयोगी बताया गया है। क्रियायोग से क्लेश कमजोर पड़ जाते हैं। कमजोर क्लेशों का नाश होने पर विवेक ख्याति का उदय होता है। योगांगों के अनुष्ठान से चित्त की अशुद्धियों का नाश होता है। योगोपनिषदों में योगाङ्गों की संख्या कहीं राजयोगाङ्गों से अधिक है तो कहीं कम बताई गई है। यहाँ पर योगोपासना के लिए उपयुक्त विशेष स्थान और समय पर पर्याप्त चर्चा हुई है। इसके साथ ही इनमें प्राण शक्ति, नाड़ी

शुद्धि और षट्चक्र भेदनादि विभिन्न क्रियाओं का समावेश मिलता है। यहाँ सुषुम्णा नाड़ी को प्राण के संचरण का मार्ग बताया गया है। इसी मार्ग में छः चक्र स्थित हैं। इसी के अन्दर चित्त और कुण्डलिनी का स्थान है। सुषुम्ना नाड़ी को शक्ति स्थान या महापथ भी कहते हैं। शांडिल्योपनिषद् के अनुसार प्रणव, प्राणायाम, नाद, लय, मन्त्र और हंसादि योग एक ही महायोग राजयोग के विभिन्न रूप हैं। इनमें दर्शाए गए समस्त योग साधन मिलकर राजयोग के लक्ष्य चित्त के नाश को ही पूरा करते हैं।

□

प्रकरण – 12

योग के अभ्यास से विवेक ख्याति रूप सिद्धि

योग सूत्र 1-20 के अनुसार श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञारूप साधनों से योग सिद्ध होता है। वहीं व्यास भाष्य में- श्रद्धा चेतस: सम्प्रसाद: अर्थात् चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है। इससे वीर्य या बल पैदा होता है। वीर्यस्य स्मृतिरूपतिष्ठते अर्थात् उस बल से स्मृति का लाभ होता है। अनन्तर उस स्मृति से चित्त समाहित या एकाग्र होता है। एकाग्रचित्त में प्रज्ञा विवेक जाग्रत होता है। वाचस्पति स्मृति को ध्यान कहते हैं। विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेक ख्यातिस्रोत उद्घाट्यते- यो. सू. व्या. भा. अर्थात् विवेक के दर्शनाभ्यास से विवेक ख्याति का मूल स्थान खुलता है। व्या. भा. सू. 1-13 के अनुसार विवेक ख्याति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का नाम अभ्यास है। वहीं वाचस्पति चित्त की सत्त्व में एकाग्रता को स्थिति बताते हैं। स्थितिसाधनान्यन्तरंगबहिरंगाणि यमनियमादीनि अर्थात् यमनियमादि योगांगसाधन चित्त में एकाग्रता पैदा करते हैं। अमृत नादानुसार-अभ्यस्य च पुन: पुन: अर्थात् योगाङ्गों का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए।

त्रिशिख ब्राह्मण-योगात्संजायते ज्ञानम् के अनुसार योगांगसाधनों से विवेकख्याति प्राप्त होती है। यह योग सूत्र 2-28 का ही अनुपालन है। इसी उपनिषत् का कहना है कि ''ज्ञानाद्योग: प्रवर्तते' अर्थात् ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है। स्पष्ट है कि यमनियमादि के अभ्यास से क्रमश: विवेकख्याति और विवेकख्याति में पर वैराग्य से राजयोग या मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञात रहे- राजयोग मनोविज्ञानाधारित मोक्ष विद्या है। त्रिशिख पृ. 127 पर कहता है कि- अभ्यासयोगेन मन:प्राणान्निरोधयेत् अर्थात् यमनियमादि योगाङ्गों के अभ्यास से मन और प्राण का निरोध करे। योगसूत्र 1-51 तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधात् निर्बीज: समाधि: के अनुसार अन्तिम सिद्धि विवेक ख्याति का भी निरोध करने पर कैवल्य होता है जो कि योग का चरम लक्ष्य है।

□

प्रकरण – 13

योग के ज्ञान से वैराग्य

एकाग्र चित्त वालों के लिए दूसरा उपाय है वैराग्य। विषयों के प्रति तृष्णा न होने को वैराग्य कहते हैं– वितृष्णा ज्ञानपूर्वकं (यो. वा. 1-15) में यह दर्शाया है। भोज इसका स्वरूप बताते हैं– ये विषय मेरे वश में हैं, मैं इनके वश में नहीं हूँ। ममैते वश्या नाहमेतेषाम् (सू. 1-15) की वृत्ति। इस वैराग्य को अपर वैराग्य के अन्तर्गत बताया गया है।

तत्परं पुरुषख्यातेर्वैतृष्ण्यम् (यो. सू. 1-16) अर्थात् सत्त्वगुणमयी विवेकख्याति में भी तृष्णा न रहना परवैराग्य कहा जाता है। इसी सूत्र की व्याख्या में ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्, यह कहकर व्यास ज्ञान की पराकाष्ठा या चरम को ही पर वैराग्य बताते हैं। प्राप्तं प्राप्तव्यम्। प्राप्तव्य वस्तु प्राप्त कर ली है। क्लेश क्षीण हो गए हैं। संसार चक्र नष्ट हो गया है। परवैराग्य की अवस्था में योगी की इस प्रकार की भावना हो जाती है, ऐसा व्यास का मत है।

देहाद्देहान्तरसंचाराख्य: संसार: (यो. वा. सू. 1-16) के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीरों में जन्म लेते रहने का नाम संसार है। अपर वैराग्य के विषय प्रत्यक्ष सांसारिक विषय ही होते हैं जबकि परवैराग्य सत्त्वादि गुणों को विषय बनाता है- द्वितीयं गुणविषयम् (भो. वृ. सू. 1-16)। क्षुरिकोपनिषत् पृ. 44 पर बताता है कि- वैराग्योत्पन्नघृष्टेन छित्वा तन्तुं न बध्यते, अर्थात् वैराग्य से विवेकख्याति में परवैराग्य करने से पुरुष का बन्धन समाप्त हो जाता है।

संसार की स्थिति तो यह है कि मनुष्य पूर्व जन्म में जिन स्तनों का दूध पीता है अगले जन्म में उन्हीं स्तनों में मर्दन करने का आनन्द लेता है- य: स्तन: पूर्वपीतस्तं निष्पीड्य मुदमश्नुते (योगोपनिषत् पृ. 386)। एवं संसार चक्रेण यूप चक्रे घटा इव अर्थात् इस तरह मनुष्य रहट में घड़े की तरह चक्रवत् घूमता रहता है। इसीलिए इसमें अपरवैराग्य के बाद उपनिषत् के पृ. 112 पर तेजोबिन्दु का कथन है कि- अहं ब्रह्मेति निश्चित्य अहं भावं परित्यज अर्थात् मैं ब्रह्म हूं, यह

निश्चय करके उस अहं भाव का भी त्याग करना चाहिए। अर्थात् विवेकख्याति में परवैराग्य कर देना चाहिए। यह परवैराग्य का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ विवेक ख्याति में परवैराग्य करने का उपदेश स्पष्ट है। सकृज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यात् पृ. 63 का भी यहाँ यही अभिप्राय है। अतः योगोपनिषदों की वैराग्य सम्बन्धी मान्यता राजयोगानुसार ही है।

□

प्रकरण – 14

ईश्वर प्रणिधान या भक्ति योग

योग के अभ्यास और वैराग्य रूप साधनों में जितनी तेजी होगी उतना जल्दी चित्त का नाश होगा– तीव्र संवेगानामासन्नः (यो. सू. 1-21)। सूत्रकार कहते हैं कि ईश्वर प्रणिधान या भक्ति योग से भी चित्त का नाश हो सकता है– ईश्वर प्रणिधानाद्वा (यो. सू. 1-23)। इतना ही नहीं व्यास जी के अनुसार भक्ति विशेष से भी शीघ्र समाधिलाभ या योगसिद्धि होती है– प्रणिधानात् भक्ति विशेषात् तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतरः (सू. 1-23 का भाष्य)। ईश्वर की भक्ति करने से ईश्वर योगी पर अनुग्रह करते हैं। यहाँ अभिध्यान से अभिप्राय है अनन्य भक्ति से। अर्थात् केवल एक मात्र ईश्वर की भक्ति से। भोज भक्ति विशेष का अर्थ करते हैं विशिष्ट उपासना। योग एक उपासना है जबकि राजयोग उसका दर्शन या फिलॉसफी है।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार परमेश्वर में संयम करना सम्प्रज्ञात योग और मोक्ष की प्राप्ति में मुख्य साधन है– परमश्वेर संयमो सम्प्रज्ञातपर्यन्त योगे मोक्षे च मुख्यकल्पः– योगसारसङ्ग्रह। वहीं वे ईश्वर प्राणिधान का अर्थ प्रणवजप पूर्वक ईश्वर का ध्यान बताते हैं। भोज के अनुसार– सर्वक्रियाणां तत्रार्पणम् अर्थात् अपने समस्त कर्मों के ईश्वरार्पण करने को ईश्वरप्रणिधान कहते हैं। विज्ञानभिक्षु सू. 1-23 के वार्तिकानुसार ओंकार के जप के साथ परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। वृत्तिकार ओंकार को यथावदुच्चारण करने को कहते हैं। तदर्थः ईश्वरश्च भावनीयः। प्रणव के अर्थ के ज्ञान के साथ ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार हमारे पूजा-उपासनादि साधनों में एक विशेष योगसम्मत अर्थ छिपा होता है, राजयोग उसको सामने लाता है।

यो. सू. 1-24-ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च के अनुसार ईश्वर की भक्ति से आत्मस्वरूप का दर्शन और योग के रोग आदि विघ्नों का नाश होता है। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयम् (तेजो बिन्दु पृ. 72) में अहं ब्रह्मास्मि मंत्र के

जप को ईश्वर प्रणिधान बताया गया है। विश्वरूपस्य देवस्य... पश्यन्हृदयपंङ्कजे अर्थात् विश्वरूप परमात्मा को हृदयकमल में देखना चाहिए। त्रिशिखब्राह्मण पृ. 130 पर ईश्वर प्रणिधान से मुक्ति का होना बताता है– न भूय: संसृतिं व्रजेत्। ध्यानबिन्दु पृ. 187 पर इसी की पुष्टि करता है– ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थित:। पाशुपत ब्रह्म पृ. 246 पर कहता है– ब्रह्मस्वरूपविज्ञानात् जगत्भोज्यं भवेत् अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप को जानने से उसके लिए संसार समाप्त हो जाता है, जो कि योग का लक्ष्य है।

ब्रह्मबिन्दु पृ. 249 के अनुसार ईश्वर की भक्ति से ईश्वरकृपावश योग सिद्ध होता है– प्रसादाद् ब्रह्मणस्तस्य। यह बात व्यास के कथन के अनुरूप है। (मं. ब्रा. पृ. 293) ब्रह्मभूतो योगी भवति में ब्रह्म प्राप्ति से योग का सिद्ध होना बताया है। सोऽहमस्मीति... न लिप्यते–योगकुण्डली पृ. 333 पर भी ईश्वर प्रणिधान रूप योग का उल्लेख है। वराह पृ. 476 पर भी इस तथ्य की पुष्टि है– अहं ब्रह्मेति नियतं मोक्षहेतु:। चरणस्मरणेन अर्थात् ईश्वर के चरण के स्मरण से योग सिद्ध होता है। तद्दृष्टिगोचरा: सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकै: अर्थात् ईश्वर की कृपा दृष्टि से चित्त का नाश हो जाता है। शांडिल्य के अनुसार– यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति, उस ईश्वर के ज्ञान से सारे संसार का ज्ञान हो जाता है।

प्रणवजप को अमृतनाद पृ. 12 पर एक रूपक के रूप में देखें– ओंकार रथमारुढ्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिं... अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं हि गच्छति, शब्दमेव विचिन्तयेत्। वहीं पृ. 18 पर नादोपासना का उपदेश करते हैं। अमृत बिन्दु पृ. 28 पर शब्दब्रह्म की उपासना का फल ब्रह्म की प्राप्ति बताता है। शब्दब्रह्मणि निष्णात: परं ब्रह्माधिगच्छति। ओंकार की महिमा ध्यानबिन्दु पृ. 190 पर देखें–

ओंकारप्रभवा देवा ओंकारप्रभवा: स्वरा:।
ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।
अर्धमात्रासमायुक्त: प्रणवो मोक्षदायक:।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वं मुमुक्षुभि:। (ध्यानबिन्दु, पृ. 189)

के अनुसार एकाक्षरी ओंकार ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। पृ. 191 पर परमात्मा का स्थान हृदय बताया गया है– हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम्। अंगुष्ठमात्रमबलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम् अर्थात् ईश्वर अंगूठे के आकार का है उसका ध्यान करें। यह व्यास भाष्य सू. 3-1 के अनुसार है। ध्यान बिन्दु पृ. 192 पर

प्रणव को नाद कहता है– ओंकारध्वनिनादेन। हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति कहकर वे प्रणव को हंसनाम देते हैं और हंसयोग से चित्त का नाश बताते हैं।

योगोनिषदों में ईश्वरप्रणिधानरूप साधन पर संभवत: सर्वाधिक बल दिया गया है। यहाँ ओंकार के एक एक अक्षर को सूक्ष्मता से ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर व्याप्त बताया गया है। शरीर में प्रणव को देखें–

अकारो दक्षिण: पक्ष: ऊकारस्तूत्तर: स्मृत:।
मकारं पुच्छमित्याहुरर्धमात्रा तु मस्तकम्।। अमृतनाद, पृ. 214

नाद बिन्दु पृ. 216 पर ओंकार की मात्राएं देखें–

आग्नेयी प्रथमा मात्रा वायव्येषा तथापरा...।

वहीं पृ. 218 पर ईश्वर भक्ति से योग की सिद्धि का उल्लेख है–

तेनैव ब्रह्मभावेन परमानन्दमश्नुते।

पृ. 221 पर नाद के विभिन्न स्वरों का सुनाई देना बताया है– किंकिणी वंशवीणा भ्रमर नि:स्वन:। राजयोग जहाँ सूत्रों तक ही सीमित था यहाँ व्यावहारिक उपासना से प्राप्त सिद्धियों का निर्देश किया गया है। पृ. 222 पर वह नाद या प्रणव में संयम करने से चित्त का नाश होना बताता है– नादे चित्तं विलीयते। हठयोग प्रदीपिका में भी यही निर्देश है– मनसो विलये जाते कैवल्यमेवाव शिष्यते। पाशुपतब्रह्म पृ. 228 पर ओंकार को विश्व की मातृका विद्या बताता है– कृत्स्नजगतां मातृकाविद्या। चार मात्राओं वाला ओंकार मेरी ईश्वर की प्राणरूपा देवता है।

उपनिषत् के पृ. 30 पर मन, हंस और सोऽहं एक ही वस्तु है–मानसो हंस: सोऽहमिति। वहीं नादानुसन्धान को यज्ञ कहा है। पृ. 230 पर जीव को प्रणव का विकार दर्शाया है। ध्यान बिन्दु पृ. 200 के अनुसार हंस या प्रणवमंत्र को जीव स्वत: ही हमेशा अपनी सांस के साथ जपता रहता है। साथ में कहता है– हंसप्रणवयोरभेद:। यह सूत्र 1–27 के अनुसार ही है। पशुपति: प्रणवस्तारक:– पा. ब्र. पृ. 238 अर्थात् पशुपति प्रणव है। पृ. 240 पर इसको अन्त: प्रणवाख्यो हंस: बताया है। इसकी प्रार्थना त्रैकालिक होती है। तीन काल इसके तीन वर्ण हैं। प्रणव या ईश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

हंसानुसंधानोऽन्तर्याग:– पृ. 234 अर्थात् हंसयोग मानसिक यज्ञ है। यह जप योग है। तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् पृ. 244 अर्थात् तत्त्वदृष्टि से संसार में अनेक कुछ भी नहीं केवल एक तत्त्व परमात्मा है। हंसयोग के अलावा संसार में मोक्ष का कोई अन्य साधन नहीं है– हंसविद्यामृते लोके नास्ति

नित्यत्वसाधनम्- ब्रह्म बिन्दु पृ. 255. भोजवृत्तिकार भक्ति को श्रेष्ठ साधन बताते हैं- सू. 1-23. ब्रह्मविद्या पृ. 256 पर परमात्मा को ब्रह्मा, विष्णु और शिव का स्वरूप बताया गया है। पृ. 257 पर देखें-

ब्रह्मणो हृदयस्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रृतः।
तालुमध्ये स्थितो रूद्रो ललाटस्थो महेश्वरः।।

हंस या ओंकार ही अच्युत और परमेश्वर है। पृथिवी से लेकर भगवान् शिव तक सभी तत्त्वों में अकारादि वर्णों का निवास है- पृथिव्यादि शिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः -ब्र. बिं. पृ. 262. हंस प्रकाश स्वरूप है। हंस हंस जपेद् वाक्यं- पृ. 264. वह सर्वव्यापी निरंजन परमात्मा है। यहाँ प्राण और अपान की ग्रन्थि को अजपा कहा गया है- प्राणापानयोर्ग्रन्थिरजपा। वहां- सहस्रमेकं द्वियुतं षट्शतं चैव सर्वदा अर्थात् मुक्ति के लिए निरन्तर ओंकार का जप करना चाहिए। मंडल ब्राह्मण पृ. 286 पर ओंकार के स्फटिकादिवत् अनेक वर्ण बताए गए हैं। योग कुंडली पृ. 329 पर मुक्ति के लिए-निरंजनमुपाश्रयेत् अर्थात् निर्गुण ईश्वर भक्ति का सहारा लेना चाहिए।

योग चूड़ामणि में पद्मादि आसन लगाकर ध्यान करने की विधि बताई गई है। वहीं पृ. 352 पर ओंकार में तीन वर्ण, तीन वेद, तीन लोक और तीन गुण बताए गए हैं। विषयों के भोगकाल में प्रणव जीवों में अधोमुख अर्थात् ईश्वर से विमुख होकर रहता है। अकार स्थूल विश्वरूप, उकार हिरण्यगर्भ सूक्ष्म और मकार कारण रूप है। अकार रक्तवर्ण ब्रह्मा, उकार शुक्लवर्ण विष्णु और मकार कृष्णवर्ण रूद्र कहा जाता है। यह सब प्रणव का ही प्रकाश है। ब्रह्मा का लय अकार में, विष्णु का लय उकार में और रूद्र मकार में लीन होता है। ज्ञानिनामूर्ध्वमुखः पृ. 353 के अनुसार प्रणव ज्ञानियों में ऊर्ध्वमुख ईश्वर के सम्मुख होकर रहता है। तदग्रं ब्रह्म चोच्यते। ओंकार का अगला भाग ब्रह्म है। वह प्रकाशमय है। मनुष्य की जाग्रदावस्था में दोनों नेत्रों के बीच हंस या ओंकार प्रकाशित होता है। हंस के सकार रूप ईश्वर का ध्यान करने से योग सिद्ध होता है। ओंकार की तीन मात्राएं इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूप हैं। उसकी तीन मात्राओं में भूः, भुवः और स्वः ये तीनों लोक स्थित हैं। इसी के पृ. 355 पर-मनसा जपेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति अर्थात् नित्य प्रकाशरूप परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

योगशिखा पृ. 288 के अनुसार ओंकार को मंत्र मनन, प्राणन और परमात्मा का आश्रय होने से कहा जाता है। मननात्प्राणनाच्चैव...। मूलाधारात्समुद्भवात् अर्थात्

मूलाधार से उत्पन्न होने के कारण भी इसे मूल मन्त्र कहते हैं। नास्ति नादात् परो मन्त्रः। नाद से बढ़कर कोई और मन्त्र नहीं है। पृ. 432 पर अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते के अनुसार नाद शब्द या प्रणव ब्रह्म है। उस शब्दब्रह्म से नाद की उत्पत्ति बीज से अंकुरवत् हुई है। यही वाणी या शब्द का पश्यन्ती रूप है। गर्जन के साथ हृदय से उत्पन्न वाले नाद को मध्यमा कहते हैं। प्राण या स्वर को वैखरी कहते हैं– प्राणेन स्वराख्येन प्रथिता वैखरी पुनः। यही नाद शाखा–पल्लव रूप में ताल्वादि स्थानों के स्पर्श से अक्षर, पद और वाक्यों का रूप धारण करता है। फलतः सभी मंत्र, वेद, शास्त्र, भाषाएं और बोलियां प्रणव से ही उत्पन्न हुए हैं।

सप्तस्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसम्भवाः पृ. 434 के अनुसार संगीत के स्वर भी ओंकार से ही पैदा हुए हैं। हकार के साथ सांस के बाहर आने से और सकार के साथ अंदर प्रदेश करने से हंस मंत्र बनता है। यो वै नादः स वै बिन्दुस्तथैवप्रकीर्तितम्। नाद ही बिन्दु और चित्त है। हंसोपनिषत् पृ. 564 पर आधारचक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक स्थित नाद को परमात्मा कहा है। वहीं पर हृदय में हंस या प्रणव के ध्यान का उपदेश मिलता है। तस्यैव जपकोट्या अर्थात् नाद या ओंकार के जप से परमात्मा का अनुभव होता है। नाद के 10 भेद हैं। योगराज में मंत्रजप का निर्देश है तथा नवचक्रों का वर्णन भी है। चक्रों में ध्यान क्रमशः करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजयोग की ईश्वरभक्तिरूप साधना का यहाँ सुन्दर, सूक्ष्म, विस्तृत और रोचक वर्णन है।

□

प्रकरण – 15

क्रियायोग या कर्मयोग

व्यास भाष्य सू. 2-1 व्युत्थितचित्तोऽपि योगयुक्त:स्यात् अर्थात् चञ्चलचित्त वाला भी योग कर सके इसके लिए राजयोग में क्रियायोग की व्यवस्था है। तप:स्वाध्याशेवरप्रणिधानि क्रियायोग: (2-1) तप, स्वाध्याय और भक्ति क्रियायोग हैं। क्रियैव योग:। वाचस्पति के अनुसार क्रिया ही योग का साधन होने से यह क्रियायोग है। योग क्रियात्मक दर्शन है। (सू. 2-2) की व्याख्या में विज्ञान भिक्षु के अनुसार- स एव कर्मयोग:। भाष्यकार के अनुसार- अशुद्धिर्नान्तरेण तप: संभेदमा पद्यते (सू. 2-1) तप रूप साधन के विना चित्त की अशुद्धि का निवारण नहीं होता। अशुद्धीरजस्तम:। रज और तम गुण चित्त के मल कहलाते हैं। योगवार्तिक के अनुसार, व्युत्थित चित्त बहिर्मुख होने पर भी योगयुक्त होना चाहता है।

वाचस्पति के अनुसार तप इस प्रकार हो कि उससे शरीर की धातुओं में विषमता पैदा न हो- न यावता धातुवैषम्यमापद्येत्- सू. 2-1. उनका स्वाध्याय से अभिप्राय प्रणवादि का जप तथा पुरुषसूक्तादि का पाठ है। भोज के अनुसार तप के अन्तर्गत चान्द्रायणादि व्रत आते हैं। व्यास के अनुसार स्वाध्याय के अन्तर्गत प्रणवादि मंत्रों का जप और मोक्षपरक शास्त्रों का अध्ययन आता है। ईश्वर प्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणम् (व्या. भा. सू. 2-1) अर्थात् अपने समस्त कर्मों को परमात्मा को अर्पण कर देना ही ईश्वरप्रणिधान है। कर्मफल संन्यासो वा। इसको कर्मफलसंन्यास भी कहते हैं। वाचस्पति के अनुसार ईश्वर परमगुरु है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार कर्मफलों का भोक्ता ईश्वर है, ऐसा चिन्तन करना ही कर्मफलत्याग है। कर्मफलसंन्यास और कर्मार्पण ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

योगसूत्र 2-2 के अनुसार क्रियायोग से समाधि की भावना पुष्ट होती है और क्लेश निर्बल हो जाते हैं। क्लेश दग्धबीज होकर अपनी उत्पादन शक्ति खो देते हैं। अनन्तर विवेकख्याति अधिकार रहित होकर निरोध करने योग्य हो जाती है। विवेकख्याति अतीन्द्रिय और सूक्ष्मविषयक होती है। ईश्वर एक सूक्ष्म विषय

है। अधिकार कार्यारम्भ को कहते हैं। विज्ञानभिक्षु के अनुसार क्रियायोग से चित्त वृत्तियों और पापों से रहित हो जाता है। चित्त एकाग्र हो जाता है।

राजयोग के क्रियायोग का अनुसरण करते हुए अद्वयतारक के अनुसार- यः सकृदुच्चारयति तस्य संसारमोचनं भवति (पृ. 9) अर्थात् जपरूप क्रियायोग से चित्त मुक्त हो जाता है। शास्त्राण्यधीत्य मेधावी (अमृतनाद पृ. 11) स्वाध्यायरूप क्रियायोग से योग सिद्ध होता है।

त्रिशिखानुसार-कर्म कर्त्तव्यमित्येव विविधेष्वेव कर्मसु।

बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते।। (पृ. 127)

स्पष्ट है कि राजयोग का क्रियायोग ही यहाँ कर्मयोग है। वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः- द. पृ. 156 पर विशेष प्रकार के व्रत भी क्रियायोग के अन्तर्गत हैं। दर्शनोपनिषत् पृ. 157 पर ईश्वर पूजन का स्वरूप इस प्रकार बताता है–

रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टानृतादिना।

हिंसादिरहितं कर्म यत्तदीश्वरपूजनम्।।

यह राजयोग की मानसिक पूजा है। रागरहित हृदय, असत्य रहित वाणी और हिंसादि से रहित कर्म ही ईश्वर का पूजन या प्रणिधान है। आगे यही उपनिषत् कहता है–

वेदोक्तेन मार्गेण मन्त्राभ्यासो जपः स्मृतः।

कल्पसूत्रे तथा वेदे धर्मशास्त्रे पुराणके।। (पृ. 158).

यह जप के स्वरूप और भेदों को बताकर उपांशु जप को साधारण जप से हजार गुणा अधिक गुणकारी बताता है। फिर मानस जप को उपांशु से भी हजार गुणा श्रेष्ठ बताता है। योगशिखा पृ. 404 पर ओंकार के जपरूपी कर्म का निर्देश मिलता है– ओंकारं तत्र चिन्तयेत्। योगतत्त्व और ब्रह्मविद्या में ज्ञानप्राप्ति व स्वाध्याय रूप कर्म से पापों का नाश होना बताया गया है। निस्संदेह योगोपनिषदों का क्रियायोग पक्ष राजयोग के क्रियायोग पक्ष से सर्वथा अभिन्न है।

□

प्रकरण – 16

अष्टांयोग

राजयोगोक्त अष्टांगयोग से चित्त की अशुद्धियों का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है। विवेकख्यातिर्हानोपाय: (व्या. भा. सू. 2-28) के अनुसार विवेकख्याति चित्त को नाश करने का साधन है। योगसाधनों के विना विवेकख्यातिरूप सिद्धि प्राप्त नहीं होती। यो. सू. 2-28 –योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये... अर्थात् योगाङ्गों के अनुष्ठान से चित्त की अशुद्धियों का क्षय और विवेकख्याति तक ज्ञान का प्रकाश होता है। व्यास के अनुसार जैसे जैसे योगसाधनों का अनुष्ठान किया जाता है वैसे वैसे चित्त के मल कमजोर पड़ते जाते हैं। जैसे जैसे अशुद्धियाँ निर्बल होती जाती हैं वैसे वैसे क्रमशः ज्ञान दीप्त होता जाता है। जैसे धर्म से सुख प्राप्त होता है वैसे ही योगांगसाधन से विवेकख्याति प्राप्त होती है। सू. 2-28 में भोज योगांगानुष्ठान को ज्ञानपूर्वक अभ्यास बताते हैं। वे चित्त के सात्त्विक परिणाम को ज्ञानदीप्ति कहते हैं। विवेकख्याति ज्ञान की अंतिम सीमा है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (यो. सू. 2-29)। ये आठ योगाङ्ग पतंजलि ने बनाए हैं। इनमें यम पाँच–अहिंसा सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:-2-30. व्यास के अनुसार सभी जीवों के प्रति दया का भाव अहिंसा है। यह यम और नियमों का आधार है। भोज के अनुसार किसी के प्राणहरण का नाम हिंसा है और तदभाव अहिंसा। व्यास ने मन और वाणी की यथार्थता को सत्य बताया है। व्यास के अनुसार सत्य समस्त प्राणियों की भलाई के लिए होता है न कि हिंसा के लिए। सत्य के मूल में हिंसा नहीं होनी चाहिए।

स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परत: स्वीकरणं-व्या. भा. सू. 2-30. शास्त्रविधि के विपरीत दूसरों का धन स्वीकार करना स्तेय और तद्विपरीत विधि से स्वीकार करना अस्तेय है। ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः। गुप्तेन्द्रिय में संयम करने का नाम ब्रह्मचर्य है। विषयों में हिंसादि दोष देखकर उन्हें स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है। विज्ञानभिक्षु ईश्वरप्रणिधान को प्रमुख योगांग मानते हैं। शौच, सन्तोष,

तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं। व्यास ने बाह्य स्वच्छता को बाह्य शौच बताया है और चित्तमलों के प्रक्षालन को अन्तः शौच।

चित्तमला मदमानासूयादयः (व्या. भा. सू. 2-32)। मद, मान और असूयादि चित्त के मल हैं। अनावश्यक पदार्थों को ग्रहण न करना सन्तोष है। भोज तुष्टि को सन्तोष बताते हैं। तपोद्वन्द्वसहनम् (व्या. भा. 2-32)। शीत-उष्ण, सुख-दु:ख और हानि-लाभ आदि अनेक द्वन्द्व हैं। ईश्वरभावनं हि ध्यानरूपतया योगस्यान्तरङ्गमेव-विज्ञानभिक्षु। ईश्वरभावना ध्यान रूप होने से योग का अन्तरङ्ग साधन है। आस्यतेऽनेन प्रकारेणेत्यासनम्। बैठने के प्रकार को आसन कहते हैं।

व्यास पद्म, वीर, भद्र और स्वस्तिकादि अनेक प्रकार के आसन गिनाते हैं। यावत्यो जीवजातयस्तावन्त्येवासनानि। (यो. वा. सू. 2-46) संसार में जितनी जीवजातियां हैं उतने ही प्रकार के आसन हैं। राजयोग मूलतः योगपरक एक दर्शन है, उपासना नहीं। अतः इसमें हठयोग के विषय आसनादिकों का अधिक विस्तार नहीं है। राजयोग में चित्त या मन के विज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। अनन्ते वा समापन्नं चित्तमासनं निर्वर्तयति- व्या. भा. सू. 2-47. अनन्त में चित्त की समाप्ति से भी आसन सिद्ध होता है। विज्ञानभिक्षु ने अनन्त का अर्थ शेषनाग करके इसको स्थिरतर विषय बताया है। भोज आकाशतत्त्व को अनन्त बताते हैं।

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः (यो. सू. 2-49)। व्यास के अनुसार प्राण एक वायु है। भोज के अनुसार इन्द्रियों की वृत्तियाँ प्राणवृत्तिपूर्वक होती हैं। प्राण और चित्त दोनों साथ रहते हैं। आसनसिद्धि के बाद ही प्राणायाम किया जाता है। बाहर की वायु को अंदर ग्रहण करना श्वास है। कोष्ठ्यस्य वायोः निःसारणं प्रश्वासः अर्थात् आन्तरिक वायु को बाहर निकालना प्रश्वास है। श्वास और प्रश्वास का अभाव ही प्राणायाम है। श्वास के साथ प्राण या मन को भी अन्दर रोका जा सकता है। प्राणायाम के तीन भेद रेचक, पूरक और कुम्भक हैं। योगसूत्र 2-30 के अनुसार बाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भवृत्ति तीनों प्रकार के प्राणायाम देश, काल और संख्या द्वारा परिदृष्ट होते हुए दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं। इससे प्राणायाम मृदु, मध्यम और तीव्र होता है।

वाचस्पति के अनुसार नियमित अभ्यास के द्वारा जब प्राणायाम दिनपक्षमासादि के क्रम से अधिकतम देश व काल तक हो सके तब उसे दीर्घ कहा जाता है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से वायु के अतिसूक्ष्म संचार को सूक्ष्म प्राणायाम कहते हैं। भोज ने बाह्यवृत्ति श्वास को रेचक, अन्तर्वृत्ति प्रश्वास

को पूरक और आभ्यन्तर स्तम्भ वृत्ति को कुम्भक बताया है। तीसरे और चौथे प्रकार के प्राणायामों में प्राण निष्क्रिय हो जाता है। तृतीय प्रकार का प्राणायाम एक प्रकार के प्रयत्न से ही सम्भव है जबकि चौथा केवलकुम्भक निरन्तर अभ्यास से स्वयं सिद्ध हो जाता है। व्यास के अनुसार चौथे प्राणायाम के लिए पूर्व की रेचकादि तीनों भूमियों पर विजय पाना आवश्यक है। तृतीयप्राणायामात् मिश्रकुम्भकात् (योगवार्तिक सू. 51) के अनुसार तीसरे प्रकार के प्राणायाम का नाम मिश्रकुम्भक है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्यानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः– योगसूत्र 2–54. इन्द्रियां जब अपने विषयों से सम्प्रयुक्त होकर चित्त के समान आकार ग्रहण करती हैं तो उसे प्रत्याहार कहते हैं। इन्द्रियों की विशेष अवस्था ही प्रत्याहार है। व्यास के अनुसार चित्त का अनुरोध होने पर इन्द्रियों का चित्त के समान हो जाना प्रत्याहार है। भिक्षु के अनुसार प्रत्याहार इन्द्रियों का धर्म है। पंच बहिरङ्गाणि साधनानि (व्या. भा. सू. 3–1)। यम से प्रत्याहार तक योग के बहिरंङ्ग साधन हैं।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (यो. सू. 3–1)। चित्त के किसी देश या स्थान के साथ बन्धन को धारणा योगाङ्ग कहते हैं। भाष्यकार के अनुसार बाह्य विषयों में चित्त की वृत्ति को धारणा कहते हैं। ये विषय हिरण्यगर्भ, वायुदेव और प्रजापति आदि हो सकते हैं। ये शुभ ध्येय हैं। मिश्र के अनुसार ये विषय मुख के ताल्वादि स्थान भी सम्भव हैं। चन्द्र, सूर्य, अग्नि और ईश्वर–देवतादि भी धारणा के विषय हो सकते हैं। भोज के अनुसार बन्ध का अर्थ स्थिरीकरण है। मिश्र बन्ध को सम्बन्ध कहते हैं।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (यो. सू. 3–2)। मन की वृत्ति की एकतानता या निरन्तरता का नाम ध्यान है। व्यास के अनुसार यह अवलम्बन में विजातीय वृत्ति से रहित सजातीय वृत्ति का निरन्तर प्रवाह है। एकतानतैकाग्रता। वैशारदीकार एकतानता को एकाग्रता कहते हैं। यह एक सदृश प्रवाह है। तदवलम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः (भोजवृत्ति सू. 3–2)। धारणा के लिए आलम्बन की निरन्तर उत्पत्ति ध्यान है।

तदेवार्थनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः (यो. सू. 3–3)। ध्यान जब ध्येय मात्र स्वरूप का प्रकाशक और अपने ध्यानाकार रूप से रहित के समान हो जाता है तब वह समाधि कहलाता है। इसमें ध्यान ध्येय का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। सम्यगाधीयत एकाग्रीक्रियते विक्षेपान्परिहृत्य मनो यत्र स समाधि– भो. वृ. सू. 3–40 के अनुसार समाधि में विक्षेपों का परिहार करके मन विषय पर एकाग्र हो जाता

है। एक ही विषय में धारणा, ध्यान और समाधि का होना संयम कहलाता है। आगे जाकर विभिन्न विषयों में मन को संयम करने से विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

राजयोग के समान ही शांडिल्योपनिषद् के अनुसार भी योग के आठ अङ्ग इस प्रकार से हैं–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि पृ. 518. वहाँ यम दस प्रकार के हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच। मन, वाणी, शरीर और कर्म से सब भूतों को क्लेश न पहुँचाना अहिंसा है। अहिंसा का यह स्वरूप व्यास की मान्यता से अभिन्न है। मन, वाणी, शरीर और कर्म से समस्त जीवों के हित में यथार्थ वचन बोलने को सत्य कहते हैं– सत्यं नाम मनोवाक्कायकर्मभिर्भूतहित यथार्थाभिभाषणम् (पृ. 519) व्यास का भी यही मत है। अस्तेयं नाम मनोवोक्कायकर्मभिः परद्रव्येषु निःस्पृहा–शांडिल्योप. पृ. 519 के अनुसार मनवचनादि से दूसरों की वस्तुओं को न चाहना अस्तेय कहलाता है। व्यास और भोज भी इनकी परिभाषा से सहमत हैं।

ब्रह्मचर्यनाम सर्वावस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वत्र मैथुनत्यागः। अर्थात् सभी अवस्थाओं में मनवचनादि से सभी जगह मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य होता है। यह विस्तृत लक्षण है उस मैथुन का जिसे व्यास ने उपस्थ के संयम को ब्रह्मचर्य कहा है। वाचस्पति मिश्र इसके लिए उपस्थ के इलावा अन्य इन्द्रियों में संयम को भी आवश्यक बताते हैं। भिक्षु ने इसके लिए आठ प्रकार के मैथुन का त्याग दर्शाया है।

व्यास के अनुसार मिताहार शौच के अन्तर्गत आता है। दया, आर्जव, क्षमा और धृति को राजयोग ने अलग–अलग नहीं गिना है। योगोपनिषदों में शौच दो प्रकार का है। मिट्टी और पानी से की जाने वाली पवित्रता बाह्यशौच तथा मन का शुद्धिकरण आन्तरिक शौच है। मन की पवित्रता के लिए बाहरी पवित्रता भी जरूरी है। अध्यात्म विद्यालभ्यम्– पृ. 519 के अनुसार आन्तरिक शौच की प्राप्ति राजयोग या अध्यात्मविद्या से होती है। स्पष्ट है कि राजयोग में मानसिक साधना की प्रधानता है।

मिताहारो नाम चतुर्थांशावशेषवन्सुस्निग्धमधुराहारः– शां. पृ. 519. घी आदि स्नेहपूर्ण और मधुराहार लेकर पेट के चौथे अंश को हवा के संचार के लिए

खाली रखने का नाम मिताहार है। व्यास इसको बाह्यशौच के अन्तर्गत मानने के पक्ष में हैं। विज्ञानभिक्षु ने अन्त: शौच के लिए मैत्री आदि साधन गिनाए हैं। भोज भी इससे सहमत हैं।

उपनिषत् तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप और व्रत दसविध नियम गिनाता है। शास्त्रविधि के अनुसार कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों के द्वारा शरीर के शोषण को तप कहते हैं। व्यासानुसार सुख-दु:खादि द्वन्द्वों को सहन करना तप है। सन्तोषो नाम यदृच्छालाभसन्तुष्टि: अर्थात् स्वकर्मफलरूप में भगवदिच्छा से प्राप्त वस्तु में तुष्टि का नाम सन्तोष है। व्यासानुसार प्राप्त साधनों से अधिक की प्राप्ति के लिए अनिच्छा को सन्तोष कहते हैं। हम देखते हैं यहाँ गिनाए गए नियम राजयोग में बताए गए नियमों में ही अन्तर्भूत हो रहे हैं। ईश्वरपूजनं नाम प्रसन्नस्वभावेन यथाशक्ति विष्णुरूद्रादिपूजनम् (उप. पृ. 520) प्रसन्नता के साथ यथाशक्ति भगवान् विष्णु और शिवादि का पूजन ही ईश्वर पूजन है।

उपनिषत् में यथाविधि गुरु द्वारा उपदिष्ट वेद के अनुकूल मन्त्रों के जप को अभ्यास कहा है जो कि विवेकख्याति का साधन हैं। व्यास ने मन्त्रजप को स्वाध्याय के अन्दर शामिल किया है। मानसं तु मनसा ध्यानयुक्तम्- पृ. 520. इस तरह स्वाध्याय भी अभ्यास है। वाचिकं द्विविधमुच्चैरूपांशुभेदेन। यहाँ भी उपांशुजप को वाचिक जप से हजार गुणा अधिक प्रभावशाली कहा गया है। मानसं कोटिगुणम्। मानस जप उससे करोड़ गुना शक्तिशाली होता है। पांतजल योग सूत्रों के भाष्य में उपासना के वे सभी तत्त्व विद्यमान हैं जो योगोपनिषदों में सरल और मधुर शब्दों में प्रस्तुत किए गए हैं।

शांडिल्योपनिषत् ने स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त और मयूर आठ आसन गिनाए हैं। व्यास इन सभी के पृथक् पृथक् नाम न देकर आदि शब्द से संकेत कर रहे हैं। शांडिल्य प्राण और अपान के समायोग को प्राणायाम कहता है। यहाँ प्राणायाम के रेचकादि तीन भेद भी यथावत् हैं। ये भेद वर्णात्मक होने से प्रणव ही हैं। भोज भी प्राणायाम को प्रणवात्मक मानते हैं। वायु प्रणव है। सम्पूर्ण विश्व के प्रणवात्मक होने से प्राणायाम प्रणवात्मक ही है। विश्वरूप भगवान् का नाम ओंकार है। उपनिषत् भी राजयोगवत् प्राणायाम से पूर्व आसन सिद्धि को आवश्यक बताता है। पृ. 530 पर इड़ा नाड़ी, ऊकारदि मूर्तियों का ध्यान, मात्रा और अन्य नाड़ियों का प्राणायाम में विस्तृत उपयोग दर्शाया गया है।

उपनिषत् विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों के बलपूर्वक आहरण को

प्रत्याहार बताता है। यहाँ प्राणायाम पंचविध माना गया है। आत्मनिमनोधारणं अर्थात् आत्मा में मन को धारणा करना इसका पहला भेद है। इसी तरह दहराकाश में बाह्याकाश को धारण करना दूसरा भेद है। इसी तरह धारणा भेद से अन्यान्य भेद कहे गए हैं। सगुण और निर्गुण के आधार पर यहाँ ध्यान के दो भेद हैं। मूर्तिध्यान को सगुण तथा अमूर्त के ध्यान को निर्गुण बताया गया है। ये भेद सर्वथा राजयोगानुसारी ही हैं।

शांडिल्य पृ. 549- जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था त्रिपुटी रहिता परमानन्दस्वरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका भवति। यह समाधि का स्वरूप है। जीवात्मा और परमात्मा की एकता अनुभव करने से ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता रूप त्रिपुटी से रहित परमानन्द स्वरूप शुद्ध चैतन्यावस्था को समाधि कहते हैं। यह लक्षण योगसूत्र 3-3 का ही विकसित रूप है।

अमृतनाद पृ. 14 पर प्रत्याहार का स्वरूप आहरण शब्द से हटकर मिलता है–

शब्दादिविषयान्पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम्।
चिन्तयेदात्मनो रश्मीन् प्रत्याहार: स उच्यते।।

अर्थात् शब्दादि पाँच विषयों और मन में आत्मा की किरणों का ध्यान करना प्रत्याहार है। यहाँ योगाङ्ग आठ की अपेक्षा केवल छ: माने गए हैं। यहाँ यम-नियम का उल्लेख नहीं है और ध्यान की जगह तर्क को योगाङ्ग मानता है। प्राणायामास्त्रय:। प्राणायाम तीन प्रकार के हैं। रूचिरं रेचकं चैव। रूचिर कुंभक का ही नाम है। प्राणायाम करते समय-सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह अर्थात् प्राणायाम के साथ गायत्री मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।

राजयोगोक्त रेचक का सुन्दर लक्षण देखें–

उत्क्षिप्य वायुमाकाशे शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।
शून्य भावे नियुंजीयाद्रेचकस्येति लक्षणम्।। (पृ. 18).

भोज इसको बाह्यवृत्ति नाम देते हैं। शून्य भाव से तात्पर्य है वायु का गतिविच्छेद या रोकना। अमृतनादानुसार वायु के अंदर खींचने को पूरक कहते हैं। जब श्वास और प्रश्वास दोनों शून्य भाव को प्राप्त होते हैं तो कुम्भक प्राणायाम होता है। उस समय प्राण रुक जाता है। इसको प्रशान्तावस्था भी कहा है।

अमृतनादानुसार संकल्पात्मक मन को संकल्पहीन आत्मा के सदृश करके उसमें निर्विकल्पक परमात्मा को धारण करना धारणा है। जीव और परमात्मा की

एकता के लिए यह जरूरी है। भ्रूदहरादुपरि सच्चिदानन्दतेज: कूटस्थं परं ब्रह्म-अद्वयतारक पृ. 2. यहाँ भी परमात्मा को ही धारणा का देश विषय या लक्ष्य बताया गया है। देहमध्यहृदय, नासिकाग्र और मूर्धा ये धारणा के स्थान या विषय बताए गए हैं। ये सभी स्थान वाचस्पति मिश्र द्वारा कहे गए ताल्वादि के अन्तर्गत आ जाते हैं। उपनिषत् के पृ. 2 से लेकर आठ तक परब्रह्म, कुण्डलिनी, व्योम, भूमि, सूर्यचन्द्रमण्डल, तालु, ज्योति, सहस्रारज्योति, चिज्ज्योति और तुरीय चैतन्य धारणा के लिए शुभ देश या विषय बताए गए हैं।

तुरीय चैतन्य अन्तर्लक्ष्य है। यहाँ का तर्क योगांग स्वाध्याय के अन्तर्गत आ जाता है। योग की जिस अवस्था में ''मैं आत्मा ही परमात्मा हूँ'' यह अनुभव हो जाए वह समाधि अवस्था है। इसमें जीव और परमात्मा की एकतानुभूति हो जाती है। भूमौ दर्भासने रम्ये (पृ. 18)। यहाँ योगाभ्यास करने के लिए उचित स्थान का विस्तृत वर्णन है। यहाँ पद्म, स्वास्तिक और भद्र आदि आसनों को योगोपयोगी बताया गया है। पद्मं स्वास्तिकं वाऽपि भद्रासनमथापि वा-पृ. 18. यहाँ धारणा का बाह्य विषय विज्ञानभिक्षु की तरह अग्नि को भी बताया गया है।

नि:शब्दं देशमास्थाय तत्रासनमवस्थित: (क्षुरिकोप. पृ. 37)। योगसाधनार्थ कैसा स्थान तथा आसन हो? यह विषय यहाँ राजयोगवत् है। तप करके चित्त पर विजय पाई जाए। यह कार्य आसक्ति के विना हो। विभिन्न योगसम्प्रदायों ने योगाङ्गगों को अपने अनुकूल बनाया है। यहाँ प्राणायाम से ही मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है। राजयोगानुसार योग का साधन भी योग है। लक्ष्य सभी उपनिषदों का अन्तत: चित्तनाश ही है। तदस्म्यहं वासुदेव:- अमृतबिन्दु पृ. 34. यहाँ भगवान् वासुदेव को धारणा का विषय कहा गया है।

तेजोबिन्दु के अनुसार योगाङ्ग देखें–

यताहारो जितक्रोधो नि:सङ्गो जितेन्द्रिय:।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निराशीरपरिग्रह:।। (पृ. 46).

अर्थात् आहारसंयम, अक्रोध, अनासक्ति, इन्द्रियविजय, द्वन्द्वहीनता अनभिमान, अनिच्छा और अपरिग्रह। यहाँ द्वन्द्वहीनता तप में और आहार संयम शौच के अन्तर्गत है। राजयोग के आठ अंग उपनिषत् में बढ़कर पन्द्रह तक हो गए हैं। ये सभी अंग विवेख्याति की ओर ले जाते हैं। पन्द्रह अंग पृ. 51 पर देखें- यम, नियम, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक्स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान और समाधि आदि। यहाँ मूलबन्ध आदि अनेक हठयोग की क्रियाएं

राजयोग से ही विकास को प्राप्त हुई हैं। वास्तव में हठयोग भी राजयोग या मोक्ष की सिद्धि के लिए ही है।

यम रूप योगाङ्ग का स्वरूप देखें–

सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रिय संयमः।
यमोऽयमिति सम्प्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः।। (तेजोबिन्दु, पृ. 51).

अर्थात् ''सब कुछ ब्रह्म है'' इस ज्ञान से इन्द्रियों में संयम करना यम कहलाता है। योगाङ्ग ब्रह्म हैं। निरन्तर इसका अभ्यास करना चाहिए। यह लक्षण सम्प्रदाय विशेष के अनुकूल ही है। विज्ञानभिक्षु भी इन्द्रियसंयम को यम मानते हैं। यहाँ ईश्वर के रूप की धारणा भी स्पष्ट सामने है। ब्रह्मभावना का सजातीय प्रवाह और विजातीय सांसारिक वस्तुओं के प्रति मोह का तिरस्कार नियम कहा जात ाहै। ईश्वरोपासकों की यम की यह परिभाषा सुन्दर और मनोवैज्ञानिक है। ईश्वर का ध्यान करके संसाररूप प्रपंच का त्याग करना योग का अङ्ग है। ईश्वर मौन रूप योगांग से प्राप्य है, शब्दरूप प्रपंच से नहीं। पंचभूतजन्य वस्तुएं प्रपंच हैं।

योगोपासना विजन अथवा निर्जन स्थान पर करनी चाहिए। योगसूत्र 2-46 में भी यही बात सामने आती है। कालरूप योगाङ्ग का विलक्षण स्वरूप देखें–

कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां विशेषतः।
कालशब्देन निर्दिष्टं अखण्डानन्दमद्वयम्।। (तेजोबिन्दु, पृ. 52).

यहाँ अद्वैत की भावना ही काल है। जिस प्रकार के आसन से अद्वैत ब्रह्म का चिन्तन हो सके वही आसन है। यहाँ आसनविशेष का निर्देश नहीं है। सिद्धासन वही है जिससे परमात्मप्राप्ति हो सके। जो संसार और चित्त को बांधता है उस परमेश्वर को मूलबन्ध कहते हैं, जबकि हठयोग में यह शरीर की एक विशेष प्रक्रिया है। यहाँ प्रायः सभी योगांगों का ईश्वरप्राप्ति या मोक्ष में विनियोग है। योगोपनिषदों की यह एक विलक्षण बात है कि ये चित्त या मन को आसन-प्राणायामादि के सांसारिक प्रपंच से हटकर सीधा परमात्मा से जोड़ते हैं।

जिस साधन से सभी शरीराङ्गों में साम्य होकर सम ब्रह्म में लय हो जाए उसे देहसाम्य रूप योगाङ्ग कहते हैं। ज्ञानमयी दृष्टि करके सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्मरूप से देखने को दृक्स्थिति योगाङ्ग कहते हैं। यहाँ मूलबन्ध रूप क्रिया को राजयोग में सहायक बताया है। प्राणायाम का भी ब्रह्म भावना में ही विनियोग किया गया है–

चित्तादि सर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते।। (पृ. 53).

अर्थात् चित्तादि का निरोध करना प्राणायाम होता है। यह लक्षण सांसारिक प्रपंच से हटकर है।

प्रपंच का निषेध रेचक, 'मैं ब्रह्म हूं' की भावना पूरक और इसी भावना में मन की निश्चिंतता को कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। विषयों को योग में बाधक देखना और ब्रह्म भावना में ही चित्त की प्रसन्नता देखने को प्रत्याहार योगांग कहते हैं। 'मैं ब्रह्म हूँ' की भावना में स्थित होने को ध्यान योगाङ्ग कहते हैं। अन्य समस्त वृत्तियों के विस्मरणपूर्वक निर्विकार ब्रह्माकारवृत्ति में मन की स्थिति का नाम समाधि योगाङ्ग है। समाधि का यह लक्षण सूत्रकारानुसार तदेवार्थमात्रनिर्भासस्वरूप शून्य स्थिति का द्योतक है।

त्रिशिखब्राह्मण यथावत् आठ ही योगाङ्ग मानता है। देहेन्द्रियेषु वैराग्यमित्युच्यते (पृ. 128)। इन्द्रियों में वैराग्य का नाम यम है। उपनिषदों के योगांग राजयोगांगवत् चित्त के नाश की ओर ही अग्रसर हैं। योगदर्शन के सूत्रों से इनका विकास होना स्पष्ट है। परतत्त्व या ईश्वर में अनुराग को नियम कहते हैं। संसार की सभी वस्तुओं में उदासीनता की भावना का नाम आसन है। चित्त की अन्तर्मुखता का नाम प्रत्याहार है। चित्त की स्थिरता को धारणा कहते हैं। ''मैं वह चिन्मात्र ही हूं'' यह चिंतन ध्यान है। ध्यान की विस्मृति को समाधि कहते हैं। यह समस्त जगत् मिथ्या है, यह प्रतीति प्राणायाम है। दु:खमेव सर्वं विवेकिन: अर्थात् विवेकी की दृष्टि में यह चित्तरूप संसार दु:ख रूप है, इस राजयोग सिद्धान्त का ही यह विशद रूप है। यहाँ मन को उपासना की क्रियाओं से समाधि की ओर मोड़ने का प्रयास स्पष्ट है।

त्रिशिख में दस प्रकार के यम बताए गए हैं। इनमें अहिंसादि चार यम योगसूत्रानुसारी हैं। दयाआर्जवादि अन्य स्वतन्त्र रूप से विकसित किए गए हैं। यहाँ नियम भी दस प्रकार के हैं। आस्तिक्य, दान, ईश्वराराधन और वेदान्तश्रवणादि स्वतन्त्र उनके अपने हैं। तप और सन्तोष राजयोगवत् हैं। यहाँ ईश्वराराधन ईश्वर प्रणिधान के समान जानना चाहिए। व्रत तप में आ जाता है और जप स्वाध्याय में। आस्तिक्य और वेदान्त श्रवण स्वाध्याय में गिनने चाहिए।

त्रिशिख में स्वस्तिक, गोमुख, वीर, पद्म, कुक्कुट, धनु, सिंह, भद्र, मुक्त, मयूर और सिंह आदि अनेक आसनों का विस्तार हुआ है। व्यास भाष्य में भी दण्ड और पर्यंकादि विचित्र आसनों का उल्लेख है। उपनिषत् में पृ. 132 पर आसनोपरान्त नाड़ी शोधन प्रक्रिया का उल्लेख है। उपरान्त राजयोगवत् प्राणायाम

की विधि दर्शायी गई है। यहाँ प्राणायाम से समस्त रोगों का नाश और सिद्धियाँ बताई गई हैं। प्राणायाम से पहले आसन को सिद्ध करना जरूरी है।

प्राणायाम के उपासकों ने प्राण के प्रत्याहार के लिए अठारह स्थान निर्धारित किए हैं। इन स्थानों में क्रमशः प्राण को धारण किया जाता है। प्रत्याहार का स्वरूप देखें–

यदष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणम्।
स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारः स उच्यते।। (त्रिशिख, पृ. 140).

पांच भूतों को मन में धारण करना धारण है। पृथिवी आदि पंचभूतों के स्थान पांव से सिर तक हैं। पिण्ड या शरीर में ब्रह्माण्ड स्थित है। व्यास के अनुसार नाभिचक्र में अग्नि और हृदयकमल में वायु का स्थान है। शरीर के पृथिवी अंश में भगवान् चतुर्बाहु का वास बताया गया है। आकाशांश में वासुदेव को धारण करने क उल्लेख है तथा उसमें ध्यान करने का उपदेश है। उभयत्र धारणा के विषय या स्थान में ही ध्यान का भी उपदेश है।

ध्यायेद्वा विश्वरूपिणम्– पृ. 148, यहाँ जगद्रूप सगुण भगवान् का ध्यान अपेक्षित है। पृ. 149 पर ज्योति का ध्यान करने को कहा है– चैतन्यज्योतिरव्ययम्। यह ध्यान हृदयकमल में किया जाता है। पृ. 150 पर जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का नाम समाधि बताया है। इस अवस्था में योगी "मैं ही परब्रह्म हूं" इस स्थिति को प्राप्त हो जाता है। व्यासानुसार भी योगी ध्येयस्वरूप को प्राप्त करके इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

दर्शनोपनिषत् में सूत्रानुसारी आठ ही योगाङ्ग हैं। यम त्रिशिख के समान दस हैं। आत्मा सर्वगत और अनश्वर है, इस ज्ञान से संयुक्त अहिंसा ही अहिंसा है। अभ्यास के साथ ज्ञान होना जरूरी है। यह लक्षण व्यासकृत लक्षण से व्यापक है। उपनिषत् इस प्रकार की अहिंसा को वरा कहता है परन्तु वेदोक्त अहिंसा को अवरा अथवा निम्न कहता है। यहाँ का वरा शब्द सूत्रानुसारी व्यापक महाव्रत से मेल खाता है। इन्द्रियानुभूत वस्तु को यथावत् कहना सत्य है। व्यासानुसार भी यही सत्य का स्वरूप है। सम्पूर्ण सत्य ब्रह्म ही है, यह भावना सर्वश्रेष्ठ सत्य है।

दूसरे मनुष्य के सोना, मोती और रत्नादि के प्रति त्याग भाव को अस्तेय कहते हैं। वाचस्पति इसको पर द्रव्य के प्रति अस्पृहा कहते हैं। पृ. 54 पर ब्रह्मचर्य का लक्षण देखें– कामेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिवर्जनम्। अर्थात् मन, वचन और कर्म से स्त्री का त्याग करना ब्रह्मचर्य हैं। दया भी एक प्रकार की अहिंसा है।

धृति एक धारणा है। ज्ञान से ही मोक्ष होता है, इस अवधारणा को धृति कहते हैं। केवल अभ्यास से मोक्ष नहीं होता। मिताहार बाह्य शौचरूप नियम है। अन्त: शौच और मनन समान हैं। मैं शुद्ध हूं, यह शौच का लक्षण है। पृ. 156 पर चान्द्रायणादि व्रतों के द्वारा शरीर का शोषण करना तप है। यदृच्छालाभ से होने वाली प्रसन्नता सन्तोष है। श्रौते स्मार्ते च विश्वासो यत्तदास्तिक्यमुच्यते (दर्शन, पृ. 157)। अर्थात् वेदों और स्मृतियों के प्रति विश्वास का नाम आस्तिक्य है। न्याय से कमाए गए धन का सुपात्र को दान करना दान है। आगे चलकर ईश्वरप्रणिधान और विवेकख्याति एक ही स्थान पर पहुँच जाते हैं।

ईश्वरपूजनरूप यम का लक्षण देखें–

रागानपेतं हृदयं वागदुष्टानृतादिना।
हिंसादिरहितं कर्म यत्तदीश्वरपूजनम्।। (पृ. 157).

राग रहित, सत्ययुक्त और अहिंसायुक्त कर्म ईश्वरपूजन है। आत्मा ज्ञान रूप, अनन्त और ध्रुव है, ऐसी मान्यता रखना सिद्धान्तश्रवण है। यह ईश्वर प्रणिधान का ही एक रूप है। वेद द्वारा वर्जित कर्म में लज्जा को ह्री कहते हैं। वेदोक्त मार्ग में श्रद्धा का नाम मति है। यहाँ स्वस्तिक और गोमुखादि नौ प्रकार के आसनों का उल्लेख है। यहाँ सुखासन का लक्षण सूत्र के अनुसार ही है।

दर्शन में प्राणायाम के तीन भेद यथावत् हैं। विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों का बलात् आहरण करना प्रत्याहार भी यथावत् है। यहाँ बलात् शब्द का प्रयोग विशेष है। यहाँ प्रत्याहार के अनेक भेद बताए गए हैं। इनमें पांच भूतों में धारणा का उपदेश है। भिक्षु भी अग्नितत्त्व में धारणा करना बताते हैं। शरीर में जानु तक पृथिवी तत्त्व और हृदय में अग्नि तत्त्व बताया गया है। ये सभी धारणा के स्थान हैं। सभी भूतों के अपने-अपने देवता हैं। ये क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईश्वर और सदाशिव हैं। यहाँ आत्मविषयक अवधारणा प्रणवात्मक है। ये समस्त धारणाएं स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर की ओर अग्रसर हैं। पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है। पृ. 184 पर समाधि का स्वरूप देखें- न मैं शरीर हूं, न मन हूं बल्कि शिव हूं।

ब्रह्मविद्यानुसार नासाग्र और नेत्र में अकार ब्रह्मग्रन्थि, हृदय में उकार विष्णुग्रन्थि और भ्रूमध्य में मकार रूद्रग्रन्थि का स्थान है। इसके उपरान्त परमात्मा का स्थान है। परमात्मा ब्रह्मादि तीनों से भी सूक्ष्म है। मन प्राण पर आरूढ़ रहता है। दोनों में से एक को वश में करने पर ये दोनों वश में हो जाते हैं। प्राणायाम से षट्चक्रभेदन करके विवेकख्याति का उदय होता है। यो. सू. 2-28 में भी इसका निर्देश है।

आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वत- पाशुपतब्रह्म पृ. 246. शुद्ध भोजन करने से चित्त शुद्ध होता है। चित्ते शुद्धे क्रमाज्ज्ञानं मुच्यन्ते ग्रन्थयः स्फुटम्। ज्यों ज्यों चित्त या मन शुद्ध होता जाता है त्यों त्यों उसकी ग्रन्थियां टूटती चली जाती हैं। मन के संशयों का नाश होता जाता है। यह व्यास भाष्य द्वारा प्रकट अनुभवों का ही विस्तार है।

ज्ञान सहित यमाद्यष्टांग योग उच्यते (मण्डल ब्राह्मण, पृ. 273)। यमादि योगांगों में ज्ञान का होना जरूरी है। शीत-उष्णता-भोजन-निद्रा पर विजय, सदा शान्ति, स्थिरता और इन्द्रिय संयम ये यम कहे गए हैं। नियमों में सत्यमार्गानुसरण, तुष्टि, निःसंगता, एकांतवास, मनोनिवृत्ति और वैराग्याभावादि मुख्य हैं। संतोष ही तुष्टि है। योगसाधना में योगांग और ज्ञान साथ-साथ चलते हैं।

आसन सुखदायक, स्थिर और देर तक होना चाहिए। प्राणायाम में सोलह, बत्तीस और चौंसठ मात्राओं का उल्लेख किया गया है। भोजवृत्ति के अनुसार मात्रा कालवाचक है। इन्द्रियों की ओर से मन को हटाकर उसके निरोध को प्रत्याहार कहते हैं। विषयेभ्य इन्द्रियार्थेभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः (मं. ब्रा. पृ. 275) यह लक्षण व्यासानुसारी है। प्रत्याहृत मन को चैतन्य में स्थापित करना धारणा अंग है। यह ईश्वरोपासना या प्रणिधान का ही एक रूप है।

समस्त शरीरों में रहने वाले एक ही चैतन्य में चित्त की एकतानता को ध्यान कहते हैं। ध्यान की विस्मृति को समाधि बताया गया है। ध्यान विस्मृतिः समाधिः (व्यास भा. सू. 3-3)। परमात्मध्यानेन मुक्तो भवति (उप. पृ. 290)। परमात्मा का ध्यान करने से मुक्ति होती है। यहाँ भ्रूमध्य में ध्यान करना व्यास सम्मत है। प्रणवादिध्वनिं निशम्य कथन तज्जयस्तदर्थभवनं का ही उपासना सम्मत रूप है। कुंडलिनी शक्ति की उपासना भी प्रणवजप के अन्तर्गत है। इसे यहाँ शक्तिचालन नाम दिया गया है।

सुस्निग्ध मधुराहारश्चतुर्थांशावशेषकः (यो. कु. पृ. 308) के अनुसार स्नेहयुक्त मधुर भोजन करके पेट के चौथे भाग को खाली रखकर ईश्वरप्राप्ति हेतु भोजन करने को मिताहार कहते हैं। यहाँ उपासक के भोजन का लक्ष्य समाधि है। व्यास इसको बाह्य शौच मानते हैं। ईश्वरप्राप्ति का साधन होने से यह चित्तवृत्ति का नाश करने में सहायक है। यहाँ वज्र और पद्म नामक दो आसनों को प्रधान माना गया है। कुंडलिनी चालन हेतु प्राणायाम जरूरी है। राजयोगवत् आसन सुखकारी होना चाहिए। सुषुम्णा नाड़ी प्राण का मार्ग है। यह चित्त का स्थान भी है। प्राणायाम

से चित्त शुद्ध होता है। प्राण शरीर के अन्दर दौड़ने वाला वायु है। प्राणवायु की स्थिरता कुंभक है। स्थिर प्राण के साथ मन भी स्थिर हो जाता है।

उपनिषत् ने कुंभक के सहित और केवल दो भेद किए हैं। सहित के पुनः चार भेद हैं– सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली और भस्रिका। प्राण साधना के लिए षट्चक्रों का ज्ञान आवश्यक है।

योगचूड़ामणि में योग के अष्टाङ्ग की जगह षडङ्ग हैं। यहाँ यम और नियमों का उल्लेख नहीं है। सिद्ध और पद्म दो प्रमुख आसन माने गए हैं। प्रणवसाधनार्थ शरीर के षट्चक्र को जानना जरूरी है। प्राण का आश्रय स्वाधिष्ठान सुषुम्णा नाड़ी का केन्द्र है। प्राण हकार की ध्वनि के साथ बाहर तथा सकार की ध्वनि के साथ अन्दर प्रवेश करता है। इस प्रकार जीव सदैव विना प्रयत्न किए स्वाभविक रूप से हंस मंत्र का जप करता रहता है। इस प्रक्रिया को समझने की जरूरत है। कुंडलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी– यो. चू. पृ. 243. यह गायत्री मंत्र कुंडलिनी नाड़ी से उत्पन्न हुआ है। यह अजपागायत्री या हंसमंत्र योगियों के लिए मोक्षप्रद है। यह शब्दरूप ब्रह्म की उपासना है।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार प्राण वायु सभी इन्द्रियों को गति प्रदान करता है। मनसा मरूता सह–यो. चू.पृ. 344. राजयोगानुसार यहाँ भी मन और प्राणवायु का एक साथ रहना बताया गया है। यहाँ योगी के लिए सात्त्विक भोजन, ब्रह्मचर्य और अल्पाहार करने का निर्देश दिया गया है। यावद्बद्धो मरूद्देहे तावत् जीवो न मुञ्चति– यो. चू. पृ. 356 अर्थात् जब तक शरीर में प्राणवायु शेष रहता है तब तक जीवात्मा शरीर में बना रहता है। मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरून्धयेत्। प्राणवायु के शरीर से बाहर निकलने का नाम मृत्यु है इसलिए प्राणवायु पर नियंत्रण करना चाहिए। प्राण पर नियन्त्रण से मन भी नियन्त्रित हो जाता है। यह प्राणसाधना का सुन्दर निरूपण है। प्राण तत्त्व पर नियन्त्रण प्राणायाम से ही सम्भव हैं यहाँ प्राणायाम के भेद योगसूत्रवत् हैं। यहाँ भी प्राणायाम के लिए मात्रा या काल का विचार किया गया है। इतना ही नहीं धारणा, ध्यान और समाधि में मात्रा और काल की भूमिका देखें–

धारणा द्वादशप्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।। (पृ. 360).

यहाँ प्रत्याहार का लक्षण पतंजलिवत् ही है। भोजन सम्बन्धी नियम भी पूर्वोक्तानुसार ही है। योगसाधना ईश्वरप्रीत्यर्थ किए जाने का उपदेश पूर्ववत् है।

योगोपनिषदों में ईश्वरोपासना का स्थान स्थान पर निर्देश दिया गया है। इसको हम ईश्वर प्रणिधान भी कह सकते हैं। योगतत्त्व उपनिषत् में सूत्रानुसार आठ योगाङ्ग है। प्राणायाम को प्राणसंयम नाम दिया गया है। यमों में मुख्य अल्पाहार है। यह शौच के अन्तर्गत आता है। नियमों में अहिंसा मुख्य है। आसनों में मुख्य कमल आसन है। तीनों प्रकार के प्राणायामों का नाड़ियों से सम्बन्ध बताया गया है। प्राणायाम में मात्रा या काल का लक्षण देखें–

जानु प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम्।
अंगुलिस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रापरिगीयते।। (पृ. 371).

सूक्ष्म वैज्ञानिक अर्थ स्पष्ट है। इसी प्रकार का लक्षण वाचस्पति मिश्र (यो. सू. 2-50) की टीका में करते हैं। इसको कालपरिदृष्ट प्राणायाम कहा गया है।

कुम्भक प्राणायाम में स्थिर होकर प्रत्याहार करना चाहिए। सुषुम्णा महापथ है। इसी में चित्त का प्रवेश और संचार होता है। यह मान्यता योग सूत्र और उपनिषत् में समान है। इन योगक्रियाओं से राजयोग या मोक्ष प्राप्त होता है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार अन्य योगसाधन राजयोग के सामने प्रपंच हैं क्योंकि राजयोग में मन की भूमिका मुख्य है। योग शिखा में कमलासन मुख्य है। कुम्भक के चार भेद हैं। वायु, अग्नि, बिन्दु, नाद, हंस और मन कुंडलिनी शक्ति से उत्पन्न होते हैं। समस्त योगों का आधार एक मन ही है। योग के समस्त साधन एक ही साध्य मोक्ष के पूरक हैं। मन का प्रकृति में लय किए विना मोक्ष दुर्लभ है।

वराहोपनिषत् सूत्रवत् आठ योगाङ्ग मानता है। पूर्वोक्त कुछ उपनिषदों की तरह यम दस हैं। नियम भी दस प्रकार के हैं। ग्यारह प्रकार के आसन इस प्रकार हैं–

चक्रं पद्मासनं कूर्मं मयूरं कुक्कुटं तथा।
वीरासनं स्वस्तिकं च भद्रं सिंहासनं तथा।
मुक्तासनं गोमुखं च। (पृ. 505).

प्राणायाम त्रिविध है। षट्चक्र को शक्तिस्थान कहते हैं। यही चित्त और प्राण का भी स्थान है। राजयोग एवं योगोपनिषदों के समस्त योगांग एक ही मुख्य लक्ष्य चित्त के नाश के पूरक हैं।

चित्त का विक्षेप करने वाली वृत्तियों को अन्तराय, योगमल, योगविघ्न या योग प्रतिपक्ष कहते हैं। ये नौ प्रकार के हैं। इनके अतिरिक्त इनके पाँच सहायक विघ्न हैं। अमृतनाद आलस्य को भी एक अन्तराय बताता है। इसमें अनुसन्धान न

करने को प्रमाद रूप विघ्न बताया है। उपनिषत् अलब्धभूमिकत्व को अलब्धि नाम देता है। योग कुण्डली राजयोगवत् व्याधि को अन्तराय बताता है। ईश्वर प्रणिधान से योग के विघ्नों का नाश होता है। प्रतिपक्ष भावनासे भी इनका विनाश संभव है। ब्रह्ममय वृत्ति से भी योग की बाधाएं नष्ट होती हैं। जो कि ईश्वरप्रणिधान ही है।

योग के छटवें अंग ध्यान से शुक्ल या शुभ धर्म का उदय होता है। परिकर्म साधन से मन पर विजय प्राप्त होती है। मनोजय हेतु शब्द संवित् भी योग का एक उपाय है। प्राण पर विजय पा लेने से मन पर स्वत: विजयलाभ हो जाता है। विजित मन में ही आत्मज्ञान का उदय संभव है। भगवन्नाम प्रणवजप भी मनोविजय का साधन है। ईश्वरप्रणिधान समस्त योगक्रियाओं का पूरक है।

चित्त या मन की ग्रहीतृ, ग्रहण या ग्राह्य के साथ एकाकारता का नाम समापत्ति या समाधि है। समापत्तियों का क्रम स्थूल विषयों की ओर से सूक्ष्म विषयों की ओर होता है। स्थूल विषयों से अभिप्राय भगवान् चतुर्भुजादि के आकारों के चिन्तन से है। पुरुष और बुद्धि की एकात्मकता में की जाने वाली सभापति को अस्मितानुगत समापत्ति कहा गया है। पुरुष और ईश्वर विषयक समापत्ति को ग्रहीतृ विषयक समापत्ति कहते हैं। योगोपनिषदों ने ग्रहीतृविषयक समापत्ति या ईश्वरप्रणिधान पर अधिक बल दिया है।

□

प्रकरण – 17

योग के विघ्न और उनका उपचार

मन की एकाग्रता में बाधक वृत्तियों को विघ्न कहते हैं। व्यास ने अपने भाष्य में 9 प्रकार के विघ्न बताए हैं– नवान्तरायाश्चित्तस्य विक्षेपा:– यो सू. 1-30. अन्तराय या विघ्न चित्त की वृत्तियों के साथ रहते हैं। सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्ति। इन विघ्नों की समाप्ति से चित्तवृत्तियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। इनके नाम क्रमश: व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व हैं। शरीर में धातु और रसादि की विषमता को व्याधि कहते हैं। चित्त की अकर्मण्यता स्त्यान है। अप्रवृत्ति आलस्य है। वैराग्याभाव अविरति है। विपर्यय ज्ञान भ्रान्तिदर्शन है। वाचस्पति के अनुसार ये योग की विरोधी वृत्तियाँ हैं जो चित्त को योग से दूर हटाती हैं। तीन धातुएँ वात, पित्त और कफ हैं। खाई और पी गई वस्तुओं के विशेष परिणाम को रस कहते हैं। न करना ही अभाव है। भोज ने चित्त के विक्षेपों का कारण रज और तम गुणों को बताया है। ये चित्त को एकाग्र करने में बाधक हैं समाधि के साधनों में उदासीनता ही प्रमाद है।

इच्छा का विघात होने से चित्त के विक्षोभ को दौर्मनस्य कहते हैं। यदंगान्येजयति कंपयति तदंगमेजयत्वम् (व्या. भा. सू. 1-31)। जिससे शरीर के अंगों में कम्पन हो उसको अंगमेजयत्व कहते हैं। न केवलं नवान्तराया:– तत्त्व वैशारदी सू. 1-31. नौ अन्तरायों के अतिरिक्त दु:खादि अनेक और भी विघ्न हैं। आध्यात्मिकादि दु:ख तीन प्रकार के हैं। व्याधि के कारण शरीर का दु:ख होता है और काम-क्रोधादि के कारण मानसिक दु:ख। बाघ आदि पशुओं से उत्पन्न दु:ख आधिभौतिक होता है जबकि ग्रहादि से जन्य दु:ख आधिक दैविक।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार सहायक विक्षेप भी विक्षेपों से उत्पन्न होते हैं। अंगमेजयत्वं सर्वांगीणो वेपथु:– भो. वृ. सू. 1-31. सभी अंगों में योग के विघ्न

इस प्रकार हैं–

भयं क्रोधमथालस्यं अतिस्वप्नाति जागरम्।
अल्पाहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत्।। (पृ. 21).

ये हैं भय, क्रोध, आलस्य, अति सोना, अति जागना अल्पाहार और अनाहार। इनका त्याग करना जरूरी है। तेजोबिन्दु (पृ. 55) के अनुसार योगसाधना के समय बाधाएं बलात् उपस्थित होती हैं। समाधौ क्रिमाणे तु विघ्नान्यान्ति वै बलात्। इनमें अनुसन्धान न करना, आलस्य, विषयलालसादि गिनाए गए हैं। इनका त्याग आवश्यक है। यहाँ प्रमाद को अननुसन्धान और अभावन कहा है। अविरति विषय लालसा है। योगकुंडली में भी पृ. 315 पर राजयोग के समान रोग को योग का पहला विघ्न माना गया है–

योगाभ्यासेन मे रोग उत्पन्न इति कथ्यते।
ततोऽभ्यासं त्यजेदेवं प्रथमं विघ्नमुच्यते।।

इसमें दिन में सोना, रात को जागना, अधिक संभोग, अधिक चलना और मल-मूत्र को रोकना आदि अन्य विघ्न भी गिनाए गए हैं। संशय भी एक प्रकार का विघ्न है। यहाँ भ्रान्तिदर्शन को भ्रान्ति नाम दिया गया है। विषय, अनाख्य और अप्राप्ति भी विघ्न हैं। यहाँ अलब्धभूमिकत्व को पूर्ववत् अलब्धि नाम दिया गया है।

पतञ्जलि के अनुसार एकत्व का अभ्यास करने से विक्षेपों का निराकरण होता है। वाचस्पति के अनुसार एकत्व ईश्वर है। मन में एकाग्रता का उदय होने से विक्षेप स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम् (यो. सू. 2-35) अर्थात् योगांगसाधना में अहिंसादि के विरोधी हिंसादि वितर्कों के उपस्थित होने पर प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। वितर्क मन में दु:ख और अज्ञान पैदा करते हैं।

तेजोबिन्दु के अनुसार विघ्नों के उपचार के लिए ब्रह्मवृत्तिरूप साधन अपनाना चाहिए। ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वम्- पृ. 42. ब्रह्मवृत्ति से पूर्णता प्राप्त होती है। एकतत्त्व ही ईश्वर है। यह राजयोग द्वारा प्रतिपादित एकतत्त्वात्मक ईश्वरवृत्ति ही है। यह सर्वविघ्ननिवारक है। ह्रस्वो दहति पापानि- वराह पृ. 54. ह्रस्व प्रणव की उपासना समस्त पापों की नाशक है। ईश्वर का नाम होने से यह ईश्वरोपासना का ही रूप है। इससे विघ्न समाप्त होते हैं (पृ0 514)। सर्वविघ्नहरश्चायं प्रणव: सर्वदोषहा।

भगवन्नाम ॐकार का जप सभी बाधाओं का निवारक है।

योगतत्त्वोपनिषत् पृ. 369 पर आलस्य, कत्थन, धूर्त गोष्ठी और स्त्री लोलुपता आदि विघ्नों को दर्शाता है। इस प्रकार योग सूत्रों और योगोपनिषदों में उभयत्र योग विघ्न और उनके उपचारों का वर्णन किया गया है।

□

प्रकरण – 18

ध्यानयोग और मनोजय

चित्त में समापत्ति या समाधिरूप विशेषताओं को पैदा करने के लिए पहले मन पर विजय पाना आवश्यक है। जीता हुआ मन ही समापत्तियों को ग्रहण करता है। मन को जीतने से तात्पर्य है मन को स्थिर करना। मन पर विजय पाने के लिए परिकर्मों की आवश्यकता होती है। इसके लिए अनेक प्रकार के विषयों या आलम्बनों में ध्यान करना पड़ता है।

सूत्रकार के अनुसार सुखी, दुःखी, पुण्यशील और पापात्माओं में क्रमशः मैत्री, दया, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से चित्त प्रसन्न होता है। भोज के अनुसार मन में ध्यान के विषय का पुनः पुनः निवेश करना भावना कहलाता है। भावनं पुनः पुनश्चेति निवेशनम्। भावना ही ध्यान है। प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते (व्या. भा. सू. 1–33). मन प्रसन्न होकर एकाग्रता और स्थिरता को प्राप्त होता है। मैत्री आदि भावनाओं से मन में शुक्ल या शुभ धर्म का उदय होता है। इन भावनाओं से मन प्रसन्न होता है। सूत्रकारानुसार प्राणायाम से भी मनोजय का लाभ संभव है। प्राणायाम करने से नियन्त्रित वायु के द्वारा शरीर को लघुता या हल्कापन प्राप्त होता है। शरीर की लघुता से मन स्थिर हो जाता है।

गन्धादि विषयों का साक्षात्कार करने वाली चित्त की वृत्तियाँ मन को जीत लेती हैं। नाक के अगले भाग में दिव्य गंध का ध्यान और साक्षात्कार करने को गन्धवृत्ति कहते हैं। इसी प्रकार व्यास ने रस, रूप, स्पर्श और शब्द वृत्तियों का स्वरूप अलग अलग बताया है।

वाचस्पति के अनुसार योग की साधना श्रद्धामूलक है। श्रद्धामूलो हि योगः। ऊपरोक्त स्थानों में किसी एक आलम्बन का प्रत्यक्ष करने पर योग के प्रति अतिशय श्रद्धा पैदा हो जाती है। श्रद्धा से ही योग में प्रवृत्ति होती है। प्रत्यक्षीकरण ही योग का लक्ष्य है। अर्थात् यौगिक प्रत्यक्ष। विशोका वा ज्योतिष्मती– सू. 46. शोक रहित प्रकाशमय ज्योतिष्मती नामक प्रवृत्ति से भी मन पर विजय प्राप्त होती

है। इसी तरह हृदय कमल में ध्यान करने से चित्त का साक्षात्कार करने से मनोविजय का लाभ सुलभ है। विशेष स्थिरता को प्राप्त करने के बाद चित्त चन्द्रमा, नक्षत्र और मणिप्रभा आदि के आकार को प्राप्त होता है। ज्योति शब्देन सात्विक: प्रकाश उच्यते (भो. वृ. सू. 1-36)। ज्योति एक सत्वगुणमय प्रकाश है। योगी के मन का ध्यान करने से भी मन पर नियन्त्रण होता है। इसके लिए कोई यथेच्छ शुभ आलम्बन भी उचित होता है। मिश्र के अनुसार यह कोई देवता होना चाहिए।

ध्यानयोग करने अथवा मन पर विजय पाने से चित्त का परमाणु से लेकर परमात्मा तक के विषयों पर वशीकरण हो जाता है। चित्त को वशीकरण की प्राप्ति होने पर वह स्थिर और परिपूर्ण हो जाता है और वह किसी अन्य उपाय की अपेक्षा नहीं करता। सूक्ष्मे निविशमानस्य परमाण्वन्तं स्थितिपदं लभते (सू. 1-40)। ऐसे चित्त को सूक्ष्म तत्त्व में निवेश करने पर वह परमाणु तक स्थैर्य प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार स्थूल पदार्थों में निवेश करने पर वह परममहत् तत्त्व तक स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

नाद बिन्दु के अनुसार नाद में आसक्त हुआ चित्त लौकिक विषयों की आकाङ्क्षा नहीं करता–

मकरन्दं पिबन्भृङ्गो गन्धान् नोपेक्षते यथा।
नादासक्तं तथा चित्तं विषयं न हि काङ्क्षते।। (पृ. 223).

इस प्रकार का चित्त चञ्चलता को त्यागकर, आन्तरिक शब्द को ग्रहण कर, संसार को भूलकर तथा एकाग्र होकर इधर उधर नहीं भटकता। यह शब्द मस्त हाथी को बांधने की तरह मन को बांधने में सक्षम हो जाता है। नाद एक रस्सी की तरह काम करता है। योगशिखा के अनुसार मन एक पक्षी जैसा है और प्राण या नाद उसको बांधने वाली रस्सी की तरह। चित्तं प्राणेन सम्बद्धं सर्वजीवेषु संस्थितम्। सभी जीवों में मन प्राण के साथ बंधा है। मन को जीतने का उपाय प्राण पर विजय प्राप्त करना है। नानाविधैर्विचारैस्तु न बाध्यं जायते मन:। बिखरे हुए विचार मन को नहीं बांध सकते। मोह पूर्वक मन पर विजय पाने की इच्छा कच्चे घड़े पर सवार होकर सागर को पार करने की इच्छा जैसी है।

विजित या निर्मल चित्त में ही आत्मज्ञान का प्रकाश होता है। इसी कारण पृ. 403 पर कहा है– मुमुक्षुभि: प्राणजय: कर्तव्यो मोक्षहेतवे। शांडिल्य के अनुसार ध्यान योग के द्वारा प्राण और मन पर विजय पाना संभव है। एकान्त ध्यान योगाच्च मन:स्पन्दो निरूध्यते (पृ. 540)। यह योगसूत्र के समान ही प्राणायाम से मन पर

विजय पाने को कहता है। उपशान्तं मनो भवेत्। इससे मन शान्त हो जाता है। व्यास के अनुसार इस अवस्था में मन तरंग रहित समुद्र की तरह शान्त हो जाता है।

यथावांच्छित देवता ध्यानात् (पृ. 539) के अनुसार अपनी इच्छानुसार देवता का ध्यान करने से मन शान्त हो जाता है। सूत्रकार भी इसे यथाभिमत ध्यान कहते हैं। एकतत्त्व या ईश्वर के अभ्यास से प्राण और चित्त दोनों पर विजय प्राप्त होती है। ओंकार का ध्यान करने से भी यह संभव है। नासिका के अग्र भाग में ध्यान करने से भी मन पर जीत होती है। हृदय कमल में मन का साक्षात्कार करने से भी मन और प्राण योगी के अधीन हो जाते हैं। स्पष्ट है कि ध्यानयोग मन को जीतने का एक विशिष्ट साधन है।

□

प्रकरण – 19

मन की समापत्ति–रूप विशेषताएँ

जब ध्यान योग से मन पर विजय प्राप्त हो जाती है तो उसमें समापत्ति आदि विशेषताएँ पैदा होने लग जाती हैं। पतजंलि के अनुसार निर्मल स्फटिक मणि की तरह राजस और तामस वृत्तियों से रहित निर्मल मन की ग्रहीतृ, ग्रहण और ग्राह्य पदार्थों में तद्विषयक समानाकारता को समापत्ति कहते हैं (यो. सू. 1–40). व्यास के अनुसार ग्राह्य पदार्थ में उपरक्त हुआ चित्त ग्राह्याकार रूप में भासने लगता है। शब्दस्पर्शादि सूक्ष्म भूतों में उपरक्त हुआ चित्त उन उन सूक्ष्म भूतों के आकारों को ग्रहण कर प्रकाशित होने लगता है।

ग्रहणालम्बनोपरतं ग्रहणसमापन्नं ग्रहणस्वरूपाकारेण निर्भासते (व्यास सू. 1–41)। ग्रहण या इन्द्रिय रूप विषय में उपरक्त हुआ मन जब उसका आकार ग्रहण करता है तब वह ग्रहणाकार रूप में भासता है। इसी तरह ग्रहीतृ नामक अहंकार उपाधि वाले पुरुष में उपरक्त होकर ग्रहीतृ पुरुषाकार रूप में प्रकाशित होता है। यह सब उसी प्रकार होता है जैसे निर्मल स्फटिकमणि के जपाकुसुम समीप रहने पर वह भी जपाकुसुमाकार रूप में भासती है।

वाचस्पति के अनुसार ग्रहण हैं इन्द्रियां। ग्रहणानीन्द्रियाणि। पुरुष का अर्थ अस्मिता है। ग्रहीतृ, ग्रहण और ग्राह्य पदार्थों को ग्रहण करने से ध्यान का परिपाक होता है। ध्यान के परिपाक से रज और तम के निवृत्त होने पर चित्त की विषयाकारता का नाम समापत्ति है। चित्ततत्त्वस्य या तदंजनता तदाकारता सा समापत्तिः सम्प्रज्ञात लक्षणो योगः। अर्थात् यही सम्प्रज्ञात समाधि या योग है। भोज भी इसका समर्थन करते हैं। अन्य वृत्ति रूप विघ्नों के दूर हो जाने पर चित्त स्वयं ही ध्येय वस्तु का साक्षात्कार या आकार ग्रहण करता है। विज्ञानभिक्षु ईश्वर को ग्रहीतृ समापत्ति मानते हैं। भोज ने ग्रहीतृ, ग्रहण और ग्राह्य शब्दों के अर्थ क्रमशः आत्मा, इन्द्रिय और विषय किए हैं। चित्त का विषयाकार रूप परिणाम ही समापत्ति है। सूत्र के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध और ध्येयाकार चिन्तन रूप भावना विशेष को सम्प्रज्ञात योग

कहते हैं। व्यास के अनुसार सम्प्रज्ञातयोग चित्तनाशरूप असम्प्रज्ञात योग को अभिमुख करता है। चित्त से सम्प्रज्ञान अर्थात् ध्येयवस्तु का सम्यक साक्षात्कार होता है। मिश्र के अनुसार योग और उसके साधन दोनों योग कहलाते हैं। अंगांगिनोरभेदः। भिक्षु को भी यह मत मान्य है।

व्यासानुसार– वितर्कश्चित्तस्याम्बने स्थूल आभोगः– सू. 1–17. चित्त की आलम्बनरूप स्थूल भावना विशेष को सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसी प्रकार चित्त की आलम्बन रूप सूक्ष्म भावना को विचारानुगत सम्प्रज्ञात योग कहते हैं। जब मन का आलम्बन ह्लाद हो तो उसे आनन्द संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। जब आलम्बन एकात्मिका संवित् हो तो उसको अस्मितानुगत समाधि कहते हैं। सवितर्क समाधि में वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता चारों सम्मिलित होते हैं। सविचार वितर्क रहित, सानन्द वितर्क और विचार रहित और अस्मिता वितर्क, विचार और आनन्द रहित होती है। ये चारों समाधियाँ आलम्बन युक्त होती हैं।

मिश्र के अनुसार जिस प्रकार धनुर्धर स्थूल लक्ष्य को बेधने के बाद सूक्ष्म लक्ष्य का वेध करता है उसी प्रकार प्राथमिक योगी स्थूल पाञ्चभौतिक चतुर्भुजरूपादि ध्येयों का साक्षात्कार करके फिर सूक्ष्म ध्येय का साक्षात्कार करता है। पंचतन्मात्राएं और प्रकृति सूक्ष्म ध्येय हैं। सूत्रकार ने अव्यक्त प्रकृति तक के समस्त विषय सूक्ष्म ध्येयों में गिनाए हैं। अहंकार भी एक सूक्ष्म पदार्थ है। सा चात्मना ग्रहीत्रा सह बुद्धिरेकात्मिका संवित् (त. वै. सू. 1–17)। पुरुष और बुद्धि में एकात्मकता का साक्षात्कार अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। इसके दो भेद हैं जीवात्मविषयक और परमात्मविषयक। अस्मिता आनन्द से भी सूक्ष्म है।

समापत्तियां आठ प्रकार की हैं। ग्राह्य या स्थूल विषयक समापत्ति वितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार चार प्रकार की है। ग्रहण या इन्द्रिय विषयक समापत्ति के सविचार और निर्विचार दो भेद हैं। इसी प्रकार गृहीतृ या आत्मविषयक समापत्ति भी सविचार और निर्विचार दो भेदों वाली है। इनका क्रम स्थूल से सूक्ष्म की ओर है। योग के आरम्भ में भगवान् की मूर्ति का ध्यान होना चाहिए। पंचभूत और इन्द्रियां स्थूल में तथा तन्मात्राएं और अहंकारादि सूक्ष्म विषयों में आते हैं। सुखाकार का साक्षात्कार आनन्द है। भिक्षु के अनुसार परमात्मविषयक समापत्ति प्रमुख है और जीवात्मविषयक गौण। योगोपनिषादों में इनके रोचक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः (व्यास सू. 1–45)। पार्थिवाणु का

सूक्ष्म विषय गन्धतन्मात्र होता है। जलीय परमाणु का रसतन्मात्र और तैजस का रूप तन्मात्र होता है। वायव्य अणु का स्पर्श और आकाशीयाणु का शब्द होता है। अलिंगात्परं सूक्ष्मं नास्ति। अलिंग का कोई सूक्ष्म नहीं होता।

ता एव सबीजः समाधिः। ऊपरोक्त चारों प्रकार की समात्तियां सबीज समाधि यां कहलाती हैं। इनमें बाह्य वस्तुरूप बीज शेष होता है। सूक्ष्म विषयों का ध्यान करते हुए जैसे-जैसे मन के रज और तम रूप आवरणों का क्षय होता जाता है वैसे-वैसे मन ध्येयाकार परिणाम को प्राप्त होता रहता है। इस अवस्था को व्यास चित्त का वैशारद्य कहते हैं।

पृ. 2 पर अद्वयतारक का कथन है कि-चित्स्वरूपोऽहमिति सदा भावयन् अर्थात् भ्रूदहर के ऊपर के स्थान में मैं चित्स्वरूप हूं की भावना करने से वह परब्रह्मस्वरूप हो जाता है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार यह ग्रहीतृविषयक समापत्ति है क्योंकि यह ईश्वरविषयक है। प्रातश्चित्राादिवर्णाखण्डसूर्यचक्रवत् वन्हिज्वाला-वलीवत्- अद्वयतारक पृ. 45. यहाँ प्रातःकालीन सूर्यविषयक समापत्ति है। समापत्ति में मन विषयाकार को ग्रहण करता है। तदाकाराकारितया उपतिष्ठति। अन्तरिक्षवत् पश्यति- यह वितर्का समापत्ति है क्योंकि यहाँ स्थूलभूतविषयक ध्यान है।

अमृत बिन्दु में ग्रहीतृ या आत्मविषयक सम्प्रज्ञात समापत्ति का वर्णन है। पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा (पृ. 28)। यह ईश्वरविषयक ग्रहीतृ समापत्ति है। अन्यत्र देखें-

तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते ध्रुवम्।। (पृ. 28).

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परञ्च यत् (पृ. 32)। ये दो विद्याएं दो प्रकार की समापत्तियां ही हैं। पहली शब्दब्रह्मविषयक और दूसरी परब्रह्मविषयक। दूसरे शब्दों में ये दोनों सम्प्रज्ञात समाधियां हैं। पहली स्थूलविषयक दूसरी सूक्ष्म विषयक।

निष्कलं निश्चलं शान्तं तद्ब्रह्माहमिति स्मृतम् (पृ. 34)। यह ग्रहीतृ विषयक समापत्ति का उदाहरण है। अन्यत्र इसी को 'तदस्म्यहं वासुदेवः' अर्थात् मैं वासुदेव हूं, इस रूप में दर्शाया गया है। तत्स्वरूपं भवेत्तस्यां विषयो मनसो गिराम् (पृ. 55) के अनुसार समापत्ति या समाधि में मन विषय के आकार को ग्रहण करता है। व्यास के अनुसार यह स्वरूप की शून्यता है। उपनिषत् में ग्रहीतृ समापत्ति को ईश्वर या ब्रह्मवृत्ति का नाम दिया गया है। ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत् (पृ. 45)।

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्–तेजोबिन्दु पृ. 56 के अनुसार पहले ब्रह्म का ध्यान करके सविचारा अस्मितानुगत समापत्ति का अभ्यास करने को कहा गया है। इस उपनिषत् में अस्मितानुगत या आत्मविषयक समापत्ति पर बड़ा बल दिया गया है। आत्मा का दर्शन करो। आत्मज्ञान प्राप्त करो। आत्मा का ही भोग करो। आत्मस्थ हो जाओ आदि आदि। अपने आत्मा में ही सन्तुष्ट होकर उसमें विचरण करो। अपने आत्मा में ही प्रसन्न होकर मोक्ष प्राप्त करो।

सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यहं ब्रह्मेति भावय– वहीं पृ. 106. सारे काम त्यागकर 'मैं ब्रह्म हूँ' यह भावना करनी चाहिए। ये सब अस्मितानुगत समापत्तियों के ही सुन्दर उदाहरण हैं।

दर्शनोपनिषत् में अस्मितानुगत समापत्ति को ब्रह्मसाक्षात्कार नाम दिया गया है। इस अवस्था में मन में चैतन्य भासता है। यदा मनसि चैतन्यं भाति। इसमें योगी सभी प्राणियों को अपने आत्मा में और अपने आत्मा को सभी प्राणियों में देखता है। ब्रह्म सम्पद्यते तदा, पृ. 184.

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कम्– ध्यान बिन्दु, पृ. 193. यहाँ सवितर्का समापत्ति का सुन्दर रूप है। यहां आभूषणों से सुसज्जित विष्णु के रूप के ध्यान का उपदेश है, वे शुद्ध स्फटिक के समान, कोटिचन्द्रमा के प्रकाश से युक्त और अतसी पुष्पवत् और चार भुजाओं वाले हैं। अन्यत्र, ब्रह्माणं रत्नगौराभं चतुर्वक्त्रं पितामहम् (पृ. 193)। यहाँ श्वेत प्रकाश वाले ब्रह्मा का ध्यान करना बताया गया है। इसी प्रकार कदली पुष्पसंकाशं सर्वदेवमयं शिवं वचन से शिवरूप के ध्यान का उपदेश है। इन्हीं मूर्तियों के साथ सूर्य, चन्द्र और अग्नि आदि विषयों के माध्यम से स्थूल विषयक सवितर्का समापत्तियों का भी मनोहर वर्णन मिलता है।

आत्मसंस्थं मनःकृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ध्यानबिन्दु पृ. 208. यहाँ पर ग्रहीतृ या ईश्वर विषयक समापत्ति का निदर्शन है। अच्युत का ध्यान भी बताया गया है। ब्रह्मविद्योपनिषत् में 'निर्मलस्फटिकाकारं दिव्यरूपमनूपमम्' के रूप में ग्रहीतृ समापत्ति है।

मण्डल ब्राह्मण में बुद्धि में स्थित सर्वाङ्गसुन्दर पुरुष के रूप के ध्यान का वर्णन है। इसको पंचवक्त्र, अंगुष्ठाकार और नीलकण्ठ बताने से यह सविचारा ग्रहीतृ समापत्ति है। परमात्माऽहमिति निश्चयात्, वहीं पृ. 282. यहाँ भी ग्रहीतृ विषयक समापत्ति है। भोज के अनुसार यही कैवल्य का कारण है। इसको दूसरे शब्दों में विवेकख्याति भी कहते हैं। ब्रह्मवित् तदेव भवति। ब्रह्म को जानने वाला

ब्रह्म ही हो जाता है।

पराकाशं महाकाशं सूर्याकाशं परमाकाशमिति पंच– वहीं पृ. 297 पर स्थूल भौतिक सवितर्का समापत्तियां हैं।

ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सच्चिदानन्दः परमात्माऽऽ विर्भवति। यहाँ दर्शाया गया ब्रह्म का ध्यान अस्मितानुगत समापत्ति है। वराहोपनिषत् में– ब्रह्मरूपतया पश्यन् ब्रह्मैव भवति स्वयम् (पृ. 471)। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह साक्षात्कार अस्मितानुगत समापत्ति है। इसमें सब कुछ चिन्मय है ऐसा साक्षात्कार होता है। अहं ब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते। अगर यह जान लिया कि मैं ब्रह्म हूँ तो इसे साक्षात्कार या समापत्ति कहते हैं। वराह का उपदेश है कि सद्रूप ब्रह्म में शीघ्र प्रवेश करके स्थिरता को प्राप्त करो। सर्वचिन्तां परित्यज्य चिन्मात्र परमो भव–शांडिल्य पृ. 538. यहाँ समस्त चिन्ताओं को त्यागकर चिन्मात्र परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिए आग्रह है। यह ईश्वरविषयक ग्रहीतृ समापत्ति है। यहाँ ग्रहीतृ विषयक दोनों प्रकार की समापत्तियां हैं— जीवात्मा विषयक और परमात्मा विषयक।

जीवात्मविषयक देखें— स्वात्मानं भावयेत्। योगोपनिषदों में विभिन्न विषयों के साक्षात्कार के अध्ययन से पता चलता है कि उत्तरकाल में राजयोग सूत्रों से ही इनमें समापत्तियों का बड़े ही रोचक तरीके से समावेश किया गया है।

☐

प्रकरण – 20

वैरत्यागादि सिद्धियाँ

सिद्धियाँ योगसाधना का फल होती हैं। समस्त प्राणियों के प्रति शत्रुता की भावना का नष्ट होना योगांगसाधना का ही फल हैं। प्राणायाम के फलस्वरूप इन्द्रियों के दोषों का जलना, धारणा की सामर्थ्य का प्राप्त होना, शरीर की लघुता, मन की स्थिरता और विवेकख्याति के आवरणों का नाश होना आदि अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। प्राणायाम से मन के मलों का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है। इससे शरीर की नाड़ियों की शुद्धि होती हैं। योग के साधनों से प्राप्त होने वाली विशेष प्रकार की शारीरिक और मानसिक योग्यताओं को सिद्धि कहते हैं। विवेकख्याति भी एक प्रकार की सिद्धि है। नाद या ओंकार में संयम करने से दूर श्रवण की योग्यता प्राप्त होती है। अग्नि में संयम करने से अग्नि ताप नहीं देता। इन्द्र देवता के रूप में संयम से लौकिक भोग या सुख प्राप्त होते हैं। नाभि में संयम करने से रोग नाश होता है। नेत्रों में संयम से सम्पूर्ण लोकों का ज्ञान संभव है। आंख ब्रह्माण्ड में सूर्य की प्रतिनिधि है। संचित कर्मो में संयम से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। राजयोग के अनुसार शरीर का हर अंग ब्रह्माण्ड के अंग का प्रतिनिधि है। इसी सिद्धान्त पर सिद्धियों का लाभ होता है।

सूक्ष्म विषयों का साक्षात्कार करने से चित्त में निर्विचार समाधि में दक्षता आती है। इससे अध्यात्मप्रसाद की प्राप्ति और प्रज्ञा लोक का उदय होता है। इसको ही ऋतम्भरा नामक प्रज्ञा कहते हैं। अनन्तर इसी प्रज्ञा के उत्कर्ष को विवेकख्याति कहते हैं। यही ज्ञान की चरम सीमा है। इसके अन्य नाम परप्रसंख्यान, सत्त्वपुरुषान्यता प्रत्यय, ग्रहीतृ समापत्ति और सत्त्वपुरुषान्यता ख्याति हैं। सूत्रकार के अनुसार यही हान या चित्तनाश का उपाय है। इसमें सात प्रकार की प्रान्त भूमि प्रज्ञा या ज्ञान की अवस्थाएं होती हैं। इन्हीं में से एक भूमि धर्म-मेघसमाधि रूप सम्प्रज्ञातयोग की पराकाष्ठा है। योग की भाषा में इसको विशोकासिद्धि, योगप्रदीप और तारक ज्ञान भी कहते हैं। इसमें क्लेशों और कर्मों की निवृत्ति होती

है। मन की इस अवस्था में ज्ञान अनन्त हो जाता है।

अद्वयतारक मन की इस अवस्था को तारक नाम देता है। तेजोबिन्दु के अनुसार ''मैं ही परात्पर या परमात्मा हूं'' इस भावनावस्था का नाम विवेकख्याति है। इसमें परजीवैक्यता या परमात्मा और जीव की एकता स्थापित हो जाती है। इसको उन्मनी, ब्रह्मैक्य या बह्मवृत्ति की अवथा भी कहते हैं। अन्त में योगी विवेकख्याति में भी परवैराग्य या त्याग की भावना करके चित्त का निरोध कर देता है। चित्त का निरोध होने पर चित्त की उस अवस्था को निर्बीज समाधि, योग, अर्थशून्यता और असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसमें चित्त का उसके संस्कारों सहित सर्ववृत्तिनिरोध हो जाता है। चित्त चरितार्थ और निवृत्त हो जाता है। मन का कार्य समाप्त हो जाता है। इसको कैवल्य, संकल्पनाश, अति रहस्य और विष्णु का परमपद भी बताया गया है। यह पुरुष या जीव की स्वरूपावस्था है। योग सिद्धियाँ वस्तुत: योग के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक हैं। योगी को इनके लालच में पड़ने से सावधान किया गया है।

व्यास के अनुसार यमादि योगसाधनों से प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य या विशेष शक्तियां सिद्धि के सूचक हैं। अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:- यो. सू. 2-35. चित्त की अहिंसा विषय में स्थिति होने पर स्वाभावत: विरोधी जीवों की वैर भावना निवृत्त हो जाती है। सत्य में स्थिति होने पर उस योगी का आशीर्वाद व्यक्ति का कल्याण करने के योग्य हो जाता है। अस्तेय में प्रतिष्ठा होने पर योगी के सामने सब रत्न उपस्थित हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:। ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठा से उसमें विशेष शक्ति का आगमन होता है। शौच या पवित्रता में मन की स्थिति से शारीरांगों के प्रति घृणा पैदा होकर अन्यों से संसर्ग का अभाव हो जाता है। इससे योगी को एकाग्रता और आत्मदर्शन की योग्यताएं प्राप्त हो जाती हैं। संतोषादनुतम: सुखलाभ: (सू. 2-41)। संतोष में चित्त की स्थिति से सर्वोच्च सुख का लाभ होता है।

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोग:। स्वाध्याय या मन्त्रजपादि में प्रतिष्ठा होने पर वांछित देवता का साक्षात्कार संभव है। ईश्वर प्रणिधान या परमात्मा की भक्ति से सम्प्रज्ञात समाधि का लाभ होता है।

आसन के सिद्ध होने पर सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्व योगी को कष्ट नहीं पहुँचाते। ततो द्वन्द्वानभिधात: (यो.सू. 2-48)। भोज के अनुसार भूख और प्यास भी द्वन्द्व ही हैं। भिक्षु के अनुसार जैसे अग्नि के द्वारा धातुओं के मल जल जाते हैं उसी

प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं। धारणासु च योग्यता मनसः। इससे मन स्थिर होता है और धारणाविषयक सामर्थ्य भी प्राप्त होती है। मिश्र के अनुसार इससे शरीर भी लघु हो जाता है। चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्राण के क्षीण होने पर समस्त इन्द्रियों के वृत्तिनिरोधपूर्वक चित्त एकाग्र हो जाता है। इससे ज्ञान का प्रकाश होता है। अविद्यादि क्लेश जल जाते हैं। प्रत्याहार करने से इन्द्रियां वश में हो जाती हैं। प्राणायाम के सिद्ध होने पर तीनों लोकों में प्राप्त करने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता, ऐसा भिक्षु का मत है।

प्राणायाम का फल अमृतनाद में सुमधुर भाषा में देखें–

यथापर्वतधातूनां दह्यन्ते धमता मलाः।
तथेन्द्रियकृता दोषाः दह्यन्ते प्राणधारणात्।।

अर्थात् जैसे पर्वत की धातुओं के मल अग्नि से जल जाते हैं वैसे ही प्राणायाम करने से इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं। इसी प्रकार उपनिषत् धारणा से पापों का क्षीण होना भी बताते हैं।

आसनं विजितं येन जितं तेन जगत् त्रयम्– त्रिशिखब्राह्मण– पृ. 131, जो योगी आसन पर विजय पा लेता है वह तीनों लोकों पर विजय पा लेता है। यहाँ प्राणायाम का फल समस्त पापों या दोषों का क्षय बताया गया है। सर्वपापैः प्रमुच्यते। वायुवित् जितेन्द्रियः। प्राणायामी इन्द्रियजित् हो जाता है। अल्पाशी स्वल्पनिद्रश्च तेजस्वी बलवान् भवेत् (पृ. 140)। वह अल्पाहारी, अल्पनिद्र, तेजस्वी और ताकतवर हो जाता है।

अपमृत्युमपक्रम्य दीर्घमायुरवाप्नुयात्। उसकी अल्पायु में मृत्यु नहीं होती और वह लम्बी उम्र पाता है। पापरोगमहाव्याधिनाशः। उसके पापों, रोगों और महारोगों का नाश हो जाता है।

अल्पमूत्रो अल्पविष्ठश्च लघुदेहो मिताशनः।
पट्विन्द्रियः पट्टमतिः कालत्रयजितात्मवान्।। (पृ. 141).

उसको मूत्र कम आता है। शौच कम होता है, शरीर हल्का हो जाता है। वह कम भोजन करता है। उसकी इन्द्रियों में पैनापन आता है और बुद्धि तेज हो जाती है। प्राणायाम से तीनों कालों का ज्ञान लाभ भी हो जाता है। प्राणायाम के ये सभी फल सूत्रकार, वाचस्पति मिश्र और विज्ञानभिक्षु को भी मान्य हैं।

दर्शनोपनिषत् आसन करने के फल के बारे में लिखता है–आसनं विजितं येन जितं तेन जगत्त्रयम्, पृ. 161. अर्थात् जो आसन पर विजय पा लेता है वह

तीनों लोकों पर विजय पा लेता है। शांडिल्योपनिषत् को भी यह मत स्वीकार है। सूत्रकार के अनुसार त्रिलोक विजय का अभिप्राय है चित्त में ज्ञान के आवरण का क्षीण हो जाना।

शांडिल्य के अनुसार प्राणायाम से नाड़ियां शुद्ध हो जाती हैं। तेन नाड्यः शुद्धाः भवन्ति। नाड़ियों के शुद्ध हो जाने से नाद की अभिव्यक्ति होती है और आरोग्य भी प्राप्त हो जाता है।

विधिवत् प्राण संयागैर्नाडीचक्रे विशोधिते।
सुषुम्नावदनं भित्त्वा सुखाद्विशति मारुतः।।

अर्थात् नाड़ी चक्र के शुद्ध हो जाने पर प्राण सुषुम्मना नाड़ी में प्रवेश करके मन की स्थिरता के रूप में फल प्रदान करता है। यहाँ मयूरासन की सिद्धि से समस्त पापों और सब रोगों का नाश होना बताया गया है। संयमविषयस्तद् वशीकार सूचना विभूतिः (त.वै.सू. 3-16)। यहाँ मिश्र जी कहते हैं कि प्राप्त विभूतियाँ या सिद्धियाँ यह बताती हैं कि योगी ने अमुक अमुक विषयों में संयम प्राप्त कर लिया है। योगोपनिषदों में दर्शायी गई समस्त सिद्धियाँ इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं। वास्तव में ये राजयोग के सिद्धान्तों का ही लोकव्यावहारिक रूप है। भारतीय दर्शन की राजयोग शाखा नितान्त व्यावहारिक है और आज तो सारा विश्व इसको अपना रहा है।

विषयभेदेन अनन्तानां संयमानामनन्ताः सिद्धयः- योगसारसङ्ग्रह के इस वचन के अनुसार विषय या आलम्बन अनन्त हैं, उनके संयम भी अनन्त हैं और उनसे प्राप्त सिद्धियाँ भी अनन्त हैं।

यहाँ यह कह देना जरूरी होगा कि जिन योगियों का चित्त व्युत्थित या चञ्चल है उनके लिए सिद्धियाँ वरदान हैं। स्थिर चित्त वाले योगियों के लिए तो ये उनके कैवल्य रूप चरम लक्ष्य में बाधक हैं। ते समाधावुपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः (यो. सू. 3-37)। इन सिद्धियों में आसक्ति रखने से फिर से दुःखपूर्ण सांसारिक प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं। भिक्षु का भी यही मत है, संगतिकरणे पुनर्विषय भोगे पतति- भोजवृत्ति (सू. 3-51)। यहाँ भोज भी यही लिखते हैं। न समाधौ उत्साहः। इससे समाधि की प्राप्ति के लिए उत्साह भङ्ग हो जाता है।

धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम् (व्या. भा. सू. 3-16) अर्थात् पदार्थ के धर्म, लक्षण और अवस्था रूप तीन प्रकार के परिणामों में संयम करने से भूतकाल और भविष्यत् काल के पदार्थों का साक्षात्कारात्मक

ज्ञान प्राप्त हो जाता है। शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनों परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं। वास्तव में ये तीनों मिश्रित नहीं हैं। इन तीनों के विभाजित रूप में संयम करने से समस्त प्राणियों की भाषाओं या बोलियों का ज्ञान हो जाता है। शब्दार्थ प्रत्ययोरितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरूतज्ञानम् (यो. सू. 3-17)।

संस्कार साक्षात्कारणात् पूर्वजातिज्ञानम् (यो. सू. 3-18)। संस्कार में संयम करके उसका साक्षात्कार करने से योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान सुलभ हो जाता है। पतंजलि यह भी कहते हैं कि यदि अन्य पुरुष के मन में संयम किया जाए तो उस पुरुष के मन का भी साक्षात्कार हो जाता है। प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् (वही 3-19)। एक अन्य प्रकार की सिद्धि में वे कहते हैं कि अपने शरीर के रूप में संयम करने से योगी का अपना शरीर अन्तर्धान या अदृश्यरूप हो जाता है।

मैत्र्यादिषु बलानि- यो. सू. 3-23. यहाँ बताया गया है कि मैत्री, करुणा और मुदिता की भावनाओं में संयम करने से उसको क्रमश: मैत्री बल, करूणाबल और मुदिताबल प्राप्त हो जाते हैं। हाथी आदि प्राणियों के बलों में मन का संयम करने से योगियों को उन्हीं प्राणियों के जैसे बल प्राप्त होते हैं। भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् (यो. सू. 3-26)। सूर्य में संयम करने से योगी को समस्त भुवनों या लोकों का ज्ञान पाना संभव है। चन्द्रमा में संयम करने से नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान भी किया जा सकता है। ध्रुवे तद्‌गतिज्ञानम् (यो. सू. 3-28)। ध्रुव नामक स्थिर गति में संयम करने से तारे के अन्तर्गत ज्योति की गति का ज्ञान हो जाता है। नाभि चक्रे कायव्यूहज्ञानम् (यो. सू. 3-29)। यह सूत्र बताता है कि नाभिचक्र में संयम करने से शरीर के वातादि दोषों और धातुओं का ज्ञान होता है।

कंठकूप में संयम करने से भूख और प्यास हट जाती है। कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्ति:। कूर्मनामक नाड़ी में संयम करने से शरीर और मन को स्थिरता प्राप्त हो जाती है– कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्। मूर्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्। प्रातिभाद्वासर्वम् (3-33)। प्रातिभनामक ज्ञान में संयम करने से समस्त पदार्थों का ज्ञान संभव है। व्यास लिखते हैं- प्रातिभं नाम तारकं। तद्विवेक्यस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपम (सू. 3-33)।

पतंजलि के अनुसार हृदय स्थान में संयम करके अपने और पराए चित्त का साक्षात्कार होता है। हृदये चित्तसंवित् (सू. 3-34)। भोग किसे कहते हैं? बुद्धिसत्त्व और पुरुष की एकता प्रतीति को भोग कहते हैं। यह भोग बुद्धि का धर्म है और

यह परार्थ है। उस परार्थ से भिन्न पुरुषबोधरूप स्वार्थज्ञान में संयम करने से चेतनमात्र पुरुष का ज्ञान होता है और प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्तासंज्ञक सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं।

उदान नामक प्राण पर विजय पाने से जल, पंकज और कांटों आदि से सम्बन्ध निवृत्त हो जाता है अर्थात् वे योगी के लिए कोई बाधा पैदा नहीं करते। इसी विजय से योगी प्रयाणकाल में अर्चिरादि शुभ्र मार्गों से होकर ऊपर के लोकों की ओर गमन करता है। समानजयाज्ज्वलनम् (सू. 3-40)। समान वायु को जीतकर वह अग्नि के समान उज्ज्वलता को प्राप्त करता है। श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम् (सू. 3-41)। श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश के आपसी सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रवण शक्ति प्राप्त होती हैं। कायाकाशयोः सम्बन्ध संयमाल्लघुतूल समापत्तेश्चाकाश गमनम् (सू. 3-42)। शरीर और आकश के सम्बन्ध में अथवा रूई आदि सूक्ष्म पदार्थों में संयम करने से आकाशगमनरूप सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

इन्द्रियों के पांच रूपों ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्त्व में संयम करने करने से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है। इससे मनोजवित्व, विकरणभाव और प्रधानजय नामक अवान्तर फल भी प्राप्त होते हैं।

प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान से समस्त पदार्थों के अधिष्ठान् और उनके यथार्थ ज्ञातृत्व का लाभ प्राप्त होता है। सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च (यो. सू. 3-49)।

क्षण और उसके क्रम में संयम करने से विवेकजन्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् (3-52)। विज्ञानभिक्षु का कथन है कि जो योगी जिस भी सिद्धि या विभूति को चाहता हो वह उसी से सम्बन्धित विषय में संयम करे।

योगशिखा में सिद्धियों को सुखदायक बताया गया है पर इनमें सुखानुभूति केवल चञ्चल चित्त वालों को ही होती है। योगी को जिस वस्तु को पाने की इच्छा हो वह उसके लिए योग की साधना करे- तथा तत्तदवाप्नोति (पृ. 48) अर्थात् जैसा भी योगी का संकल्प वैसी उसकी सिद्धि।

नादे मनोलयं ब्रह्मन् दूरश्रवणकारणम् (योग शिखा पृ. 447) अर्थात् नाद या प्राणायाम में मन की दक्षता से दूर की आवाज सुनने की क्षमता प्राप्त होती है। सिद्धियाँ केवल जितेन्द्रिय और शान्त चित्त वाले योगी को प्राप्त होती हैं। जितेन्द्रियाणां

शान्तानाम्। मन पर विजय प्राप्त करने के बाद ही योगी समापत्ति या समाधि की योग्यता प्राप्त करके सिद्धियाँ प्राप्त करता है।

बिन्दौ मनोलयं कृत्वा दूरदर्शनमवाप्नुयात् (यो. शि. पृ. 447)। यहाँ बिन्दु में मन का संयम करने से दूरदर्शन रूप सिद्धि का होना बताया गया है। ध्यान रहे सूत्रकार के अनुसार ही यहाँ दूरश्रवण और दूरदर्शन रूप सिद्धियों का उल्लेख है।

कालात्मनिमनोलीनं त्रिकालज्ञानकारणम्- (यो. शि. पृ. 447) अर्थात् कालात्मा सूर्य में संयम करने से तीनों कालों का ज्ञान सम्भव है। संयम के विषय के आधार के स्वभावानुसार सिद्धि का प्राप्त होना राजयोगानुरूप ही है।

परकायमनोयोगः परकायप्रवेशकृत् (यो. शि. 447)। योगसूत्र में पर शरीर प्रवेश रूप सिद्धि का उल्लेख है। उसी प्रकार यहाँ पर भी दूसरे के शरीर और मन में संयम करने से पर शरीर प्रवेश रूप सिद्धि का सरल भाषा में वर्णन है।

अमृतं चिन्तयेन्मूर्ध्नि क्षुत्तृषाविषशान्तये। (यो. शि. पृ. 447)। यहाँ भूख प्यास और विष की शान्ति के लिए मूर्धा के अमृत में संयम का उपदेश स्पष्ट है। इसी प्रकार- पृथिव्यां धारयेच्चित्तं पातालगमनं भवेत् (वहीं पृ. 447)। चित्त को पृथिवी में संयमित करने से पाताल जाने की योग्यता प्राप्त होती है। पतंजलि के अनुसार पृथिवीमहाभूत में संयम करने से भूत विजय प्राप्त होती है। व्यास के अनुसार भूततत्त्व की सिद्धि से योगी शिला या पत्थर में भी प्रवेश कर सकता है। इससे योगी जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है। प्राकाम्य नामक ऐश्वर्य के प्राप्त करने पर योगी की इच्छा को कोई भी पदार्थ नहीं रोक सकता। वह पानी की तरह भूमि या मिट्टी में भी प्रवेश कर सकता है।

सलिले धारयेच्चित्तं नाम्भसा परिभूयते। जल में संयम करने से जल योगी को कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। व्यास का वचन भी है कि उस अवस्था में जल की स्निग्धता योगी के लिए बाधक नहीं बनती। अग्नौ संधारयेच्चित्तं अग्निना दह्यते न सः। अग्नि में संयम करने से योगी को आग नहीं जलाती। व्यास की उक्ति देखें- नाग्निरूष्णो दहति।

उपनिषत् कहता है- वायौ मनोलयं कुर्यादाकाशगमनं भवेत् (पृ. 448)। व्यास के अनुसार भी वायु उसे प्रवाहित नहीं करता। न प्रणामी वायुः वहति। विराड्रूपे मनोयुञ्जन् महिमानमवाप्नुयात् (यो. शि. पृ. 448)। यदि भगवान् के विराट् रूप में संयम किया जाए तो महिमा नामक सिद्धि प्राप्त होती है।

विज्ञानभिखु के अनुसार विभिन्न प्रकार के विषयों में संयम करने से विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। चतुर्मुखे मनोयुञ्जन् जगत्सृष्टिकरो भवेत्। (यो. शि. पृ. 448)। चतुर्मुख ब्रह्मा में मन का संयम करने से योगी जगत्सृष्टिकर्ता बह्मावत् हो जाता है। इन्द्र के रूप में मन का संयम करने से योगी मर्त्यलोक या संसार के भोगों को भोगने की शक्ति प्राप्त करता है। इन्द्ररूपिणमात्मानं भावयन् मर्त्यभोगवान्।

जगत्पालक विष्णु भगवान् के रूप में संयम करने से योगी सम्पूर्ण संसार का पालनकर्ता हो जाता है। रूद्ररूपे महायोगी संहरत्येव तेजसा। रूद्र भगवान् के रूप में संयम करने से योगी को सृष्टि का संहार करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। भगवान् नारायण के रूप में मन का संयम करने से वह नारायणरूप हो जाता है। वासुदेवे मनोयुञ्जन् सर्वसिद्धिमवाप्नुमात्। भगवान् वासुदेव में संयम करने से योगी को एक साथ समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। स्पष्ट है कि जिस भी देवता के रूप में मन का संयम किया जाता है योगी को उसी देवता की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भाव एवात्र कारणम्। उपनिषत् के अनुसार योगसिद्धि में योगी का भाव या सङ्कल्प ही मुख्य कारण है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार यथासंकल्प सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। जितने प्रकार के संकल्प हैं उतने ही प्रकार की सिद्धियाँ हैं।

सिद्धौ चित्तं न कुर्वीत चञ्चलत्वेन चेतस: (पृ. 449)। योगी से कहा गया है कि यदि चित्त चञ्चल हो तो मन को सिद्धि में नहीं फंसाना चाहिए। ये सिद्धियाँ योग के परम लक्ष्य कैवल्य में बाधक होती हैं। योगसूत्र 5-51 में पतंजलि कहते हैं कि योगयात्रा के मार्गस्थ देवताओं के प्रलोभनरूप आग्रह से बचकर अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहना चाहिए। भिक्षु के अनुसार मोक्षाभिलाषियों को विवेकख्याति में संयम करना उपयुक्त होता है।

तत्तत्स्थाने संयमात्त्सिद्धयो भवन्ति-शांडिल्य (पृ. 547) अर्थात् नाना प्रकार के विषयों में संयम् करने से उन उन विषयों से सम्बन्धित सिद्धियाँ प्राप्ति होती हैं। नाक के अगले भाग में प्राण को धारण करने से वायु पर विजय प्राप्त होती है। नासाग्रे वायुविजयं भवति। नाभि के बीच में मन का संयम करने से समस्त रोगों का नाश हो जाता है। नाभिमध्ये सर्वरोगविनाश:। प्राण और चित्त दोनों का मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ही है। दोनों एक ही आश्रय में रहते हैं। पतंजलि ने भी नाभिचक्र के संयम का वर्णन किया है। पांव के अंगूठे में संयम करने से शरीर लघु हो

जाता है।

नासिका के अग्रभाग में मन का संयम करने से इन्द्रलोक का ज्ञान होता है, नासाग्रे चित्तसंयमादिन्द्रलोकज्ञानम्। इसी प्रकार नाक के निचले भाग में संयम करने से अग्निलोक का ज्ञान होता है। तदधश्चित्तसंयमादग्निलोकज्ञानम्। इसी प्रकार आंखों में संयम करने से समस्त लोकों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह सूर्य में संयम करने जैसा ही है।

धर्माधर्म संयमादतीतानागतज्ञानम्- (वहीं पृ. 547)। धर्म-अधर्म में चित्त का संयम करने से भूतकाल और भविष्यत् काल का ज्ञान संभव है। उपनिषत्कार कहता है कि सभी प्राणियों की भाषा को जानने के लिए प्रत्येक प्राणी की आवाज में संयम करना चाहिए। तत्तज्जन्तुध्वनौ चित्तसंयमात् सर्वजन्तुरूतज्ञानम्। यह सिद्धि पतंजलि सूत्र के अनुरूप ही है।

संचित्कर्मणि चित्तसंयमात् पूर्वजातिज्ञानम्। अर्थात् अपने संचित्कर्मों में मन का संयम कने से पूर्व जन्म का ज्ञान सम्भव है। (योगसूत्र 3-18) में भी इसका उल्लेख है। नाभि चक्रे काय व्यूह ज्ञानम्। यह यथावत् उपनिषदों में आया है। यहाँ अन्य अनेक प्रकार की सिद्धियों के स्वरूपों को समझना कठिन नहीं होगा क्योंकि इनकी भाषा सरल है। जैसे- कायाकाशसंयमादाकाशज्ञानम्। परचित्ते संयमात् परचित्तज्ञानम्। बले चित्तसंयमाद्धनुमदादिबलम्। सूर्ये चित्तसंयमाद् भुवनज्ञानम्। चन्द्रे चित्तसंयमात्ताराव्यूहज्ञानम्। ध्रुवे तद्गतिदर्शनम्। स्वार्थ संयमात् पुरुषज्ञानम् आदि आदि। स्पष्ट है कि किसी काल विशेष में जबकि योगसाहित्य और उसकी प्रणाली को नष्ट होने से बचाना आवश्यक समझा गया होगा उस समय योग को पतंजलि ने सूत्रबद्ध करके राजयोगसूत्रों की रचना की थी। जैसे ही स्थिति अनुकूल हुई होगी समाज ने सूत्रों का सहारा लेकर फिर से राजयोग सूत्रों को अपने व्यवहार में लाकर सरल, मधुर और सर्वजनोपयोगी रूप प्रदान किया जिसको आज हम योगोपनिषत्साहित्य के रूप में अपने सामने पाते हैं।

□

प्रकरण – 21

विवेकख्याति-रूप सर्वोच्च योगसिद्धि

योगसाधना में सबसे बड़ी सिद्धि विवेकख्याति है। यह ज्ञान की पराकाष्ठा है। सूक्ष्म विषयों का ध्यान करते करते चित्त के आवरण रूपरज और तम गुण क्षीण होते चले जाते हैं। चित्त तब ध्येय का रूप ग्रहण करता है। चित्त की इस अवस्था को चित्तवैशारद्य कहते हैं– रजस्तमोभ्यां अनभिभूत: स्वच्छ: स्थितिप्रवाह: वैशारद्यम्-व्यास (सू. 1-47)। यह मन की एक स्वच्छावस्था है। भिक्षु के अनुसार इसमें प्रकृति और पुरुष का विवेकज्ञान हो जाता है। अर्थात् जड़ और चेतन की पृथक्ता का ज्ञान। वस्तुत: यह परमेश्वर तत्त्व का साक्षात्कार है। यही योग से प्राप्त होने वाले ज्ञान की चरम सीमा है। इसमें परेश्वर के ज्ञान की प्राप्ति के लिए तब किसी भी अन्य उपाय की जरूरत नहीं रह जाती।

निर्विचाराया उत्कर्ष: (सू. 1-47), भिक्षु के अनुसार यह निर्विचार समापत्ति का उत्कर्ष है। व्यास के अनुसार यह अध्यात्म प्रसाद है- निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसाद: (सू. 1-47)। इसमें सूक्ष्म पदार्थ से लेकर प्रकृति पर्यन्त समस्त पदार्थों का एक ही काल में साक्षात्काररूप प्रज्ञालोक प्राप्त हो जाता है। मिश्र के अनुसार इसमें योगी अपने ज्ञानप्रकर्ष के कारण सबसे ऊपर स्थित होकर वहाँ से दु:ख से त्रस्त जनों को देखने लगता है। शोचतो जनान्पश्यति। भोज के अनुसार इसमें चित्त निर्मल हो जाता है। पतंजलि इस ज्ञान को ऋतम्भरा प्रज्ञा नाम देते हैं। ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा (यो. सू. 1-48)। यह प्रज्ञा सत्य की धारक है। मन की इस अवस्था में मिथ्या ज्ञान का अंश भी शेष नहीं रह जाता। लौकिक या भौतिक ज्ञानों में अविद्या का अंश सदैव शेष बना रहता है पर इसमें नहीं। यह अन्य सभी प्रज्ञाओं से उत्तम प्रज्ञा है।

विवेकख्याति या सम्प्रज्ञात योग में विपर्यय ज्ञान बाधित नहीं करता। इसमें मन प्रकृत्ति और पुरुष के भेद ज्ञान में मग्न रहता है। व्यास इस स्थिति को परप्रसंख्यान कहते हैं। सत्त्वात्मिका वृत्ति होने से इसको विवेकख्याति कहते हैं।

यह चितिशक्ति से विपरीत परिणामशील और विनाशशील है। इसमें समाधि के नए-नए संस्कार उत्पन्न होते रहते हैं। ये विक्षेपजन्य विपरीत संस्कारों को रोकते हैं।

बुद्धितत्त्वरूप प्रकृति और पुरुष या आत्मा का भेदज्ञान ही विवेकख्याति है। इस ज्ञान से क्लेश निर्बल होकर जल जाते हैं। यही ग्रहीतृ विषयक समापत्ति है। यह परमात्माकाररूपिणी है। इसमें गुण अन्य हैं और पुरुष अन्य है, इस प्रकार का अनुभव होता है। इस ज्ञान में सात प्रकार की भूमियाँ या अवस्थाएँ होती हैं। इन सात अवस्थाओं का द्रष्टा योगी कुशल कहलाता है।

विवेकख्यातिरूप सिद्धि को प्राप्त करने पर योगी समस्त पदार्थों का अधिष्ठाता और ज्ञाता हो जाता है। उसको तीनों कालों का ज्ञान प्राप्त होता है। उसके अविद्यादि सर्वक्लेश क्षीण हो जाते हैं। वह स्वतन्त्र विचरण करता है। इसको व्यास विशोका नाम की सिद्धि बताते हैं- एषा विशोका नाम सिद्धिः (यो. सू. 3-49)। जहाँ दो समान पदार्थों का परस्पर भेदज्ञान दुष्कर होता है वहाँ यह भेद ज्ञान इस सिद्धि से संभव है। यह भेद ज्ञान जाति, लक्षण और देश के आधार पर होता है तथा संसार सागर से पार उतारने वाला है। व्यास के अनुसार यह योगी की अपनी प्रतिभा से उत्पन्न होता है। योगप्रदीप या संप्रज्ञातसमाधि विवेकख्याति का ही एक अंश है।

अंत्यायां भूमिकायां उत्पन्नं ज्ञानं तारकमिति (भोजवृत्ति सू. 3-54) अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि की अन्तिम भूमिका तारक कहलाती है। संसार रूप विशाल सागर से पार करवाने के कारण यह तारक है। विवेकख्याति के द्वारा समस्त पदार्थों को एक साथ स्पष्ट देखना सम्भव है। इसमें जन्मान्तरीय विचार निवृत्त हो जाते हैं।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् (यो. सू. 4-26)। विवेक ज्ञान के उदय होने पर योगी का चित्त योगमार्ग में संचार करने से कैवल्य के अभिमुख हो जाता है। इसमें व्युत्थानकालीन संस्कारों से मैं हूं, जानता हूं, नहीं जानता हूं जैसे अन्य ज्ञान पैदा होते रहते हैं। हानमेषां क्लेशवदुक्तम् (यो. सू. 4-28)। उक्त ज्ञानों का नाश विवेकख्याति से अविद्यादि क्लेशों के समान किया जाता है। ये दग्धबीज होकर पुनः पैदा नहीं होते। ज्ञात रहे कि विवेकख्याति के संस्कार चित्त के रहने तक ही शेष रहते हैं।

भिक्षु के अनुसार विवेकख्याति का सबसे श्रेष्ठ रूप धर्ममेधसमाधि है। इसमें भावों के अधिष्ठाता होने के प्रति इच्छा का अभाव हो जाता है और सभी योग

सिद्धियों के प्रति कोई लालसा शेष नहीं रहती। योगी कोई भी पदार्थ पाना नहीं चाहता। रजोगुण का लेश भी शेष नहीं रहता। मन केवल बुद्धि पुरुष के भेदभाव में स्थित हो जाता है। धर्ममेघ अवस्था में सदैव अशुक्लाकृष्ण परमपुरुषार्थसाधक रूप धर्म की वर्षा होती रहती है। इसमें समस्त क्लेशों और कर्मों की निवृत्ति हो जाती है। ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः।

धर्ममेघ समाधि से चित्त समस्त आवरणों से रहित अपरिमेय और अपरिच्छिन्न हो जाता है। बाह्य विषयों की ज्ञेयता अल्प हो जाती है। इसमें क्लेश और कर्मों की मूल वासनाएं भी नष्ट हो जाती हैं। जीवन्नेव विद्वान् विमुक्तो भवति। (व्या. भा. सू. 4-30)। इस अवस्था में पुरुष जीते जी मुक्त हो जाता है। इसी को जीवन्मुक्ति कहते हैं। आवरण रहित चित्त अनन्त हो जाता है। उसका स्वभाव व्यापक हो जाता है, आकाश की तरह।

विवेकख्याति अर्थात् विवेकज्ञान। नित्य और अनित्य वस्तुओं का ज्ञान। बुद्धि अनित्य है तो पुरुष या आत्मा नित्य-यह ज्ञान। यह तारक ज्ञान है। अनित्य संसार सागर से पार कराने वाला (अद्वयतारक पृ. 2 पर देखें)। गर्भजन्मजरामरणसंसार महद्भयात् संतारयति तस्मात्तारकमिति। यह जीव को ऊपरोक्त भयों से पार लगाता है अतः तारक है। इसके दो भेद हैं मूर्तितारक और अमूर्तितारक। ये साक्षात्कार के लिए दो प्रकार के विषय हैं।

अमृत बिन्दु में विवेकख्यातिरूप परमात्मध्यान देखें-

> तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्।
> तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। (पृ. 28).

यहां परमात्मसाक्षात्कार करने से कैवल्य प्राप्त होना लिखा है अतः यह साक्षात्कार का अन्तिम चरण है। यही विवेकख्यातिरूप सिद्धि है। यह कैवल्य का कारण है। इससे योगी सभी प्रकार की गायों में एक ही दूध के समान सारे संसार में एक ही आत्मा को देखता है। क्षुरिकोपनिषत् में कहा है– तद्भाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जन्मविवर्जिताः। अर्थात् सारे संसार में एक परमात्मा का दर्शन करने से मोक्ष या कैवल्य प्राप्त होता है। तेजोबिन्दु के अनुसार परमात्मध्यान योगाङ्ग साधनों में भी ब्रह्म के दर्शन करता है। यह निर्विकार और ब्रह्माकार वृत्ति है। ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वम्। यह ज्ञान ही योग की पूर्णता है।

जो केवल परमात्मविषयक बातों में कुशल तो होते हैं परन्तु उसका साक्षात्कार नहीं करते वे संसार में जन्मादि के बन्धन में पड़ते हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा और

सनकादि ऋषि कभी ज्ञानमयी वृत्ति के विना नहीं रहते उसी प्रकार विवेकी ज्ञानमयी वृत्ति के विना नहीं रहते। योगाङ्ग साधनों से शुद्ध हुए चित्त में ब्रह्मवृत्ति का वास होता है– उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानमतः परम्– तेजोबिन्दु (पृ. 55)। अर्थात् दृश्य विषयों के साक्षात्कार के बाद ही ब्रह्माकार का चिन्तन होता है। ब्रह्माकार वृत्ति अखण्डैकरस है। संसार के समस्त पदार्थ अखण्डैकरस और चिन्मय हैं।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं चिन्मात्रमेव हि।
द्रव्यं कालञ्च चिन्मात्रं ज्ञानं ज्ञेयं चिदेव हि।। (वहीं पृ. 61).

ब्रह्माकाररूप विवेकख्याति देखें–

अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोऽस्मि नित्यशुद्धोस्म्यहं सदा।
निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोऽस्म्यहं सदा।। (पृ. 66).

राजयोग के अनुसार यह ब्रह्मदृष्टि त्रिगुणमय संसार से पृथक् त्रिगुणातीत है। इस अवस्था में योगी का अनुभव देखें–

असदेव सदा सर्वमसदेव भवोद्भवम्।
असदेव गुणं सर्वं सन्मात्रमहमेव हि।। (पृ. 72).

यह संसार असत् है। तीनों गुण असत् हैं। मैं सत् रूप हूँ।

असत्यं हि मनोरूपमसत्यं बुद्धिरूपकम्।
अहंकारमसद्धीति नित्योऽहं शाश्वतो ह्यजः।। (पृ. 71).

मेरा मन असत्य है। बुद्धि असत्य है। अहंकार असत्य है। मैं नित्य, शाश्वत और अजन्मा ईश्वर हूं। परमात्मसाक्षत्काररूप विवेकरख्याति को यहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' रूप मन्त्र बताया गया है। इस विषय के श्लोकों में से एक यहाँ देखें–

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तवृत्तिं विनाशयेत्।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं संकल्पादीन्विनाशयेत्। (पृ. 72).

राजयोग के अनुसार यही विवेकज्ञान चित्त के नाश का उपाय है– विवेकख्याति रविप्लवा हानोपायः (यो. सू. 2-26)। तेजोबिन्दु में इस विषय को पर्याप्त विस्तार दिया गया है।

परमात्मसाक्षात्कार की इस अवस्था को उपनिषत् ने जीवन्मुक्ति नाम दिया है–

देहत्रयादतिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम्।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।। तेजोबिन्दु (पृ. 74).

दूसरी ओर देखें योगी अपने को परमात्मस्वरूप मानकर अपने आप को प्रकृत्ति,

चित्त, बुद्धि और संसार से पृथक् मानता है–

न मे चित्तं न मे बुद्धिर्नाहङ्कारो न चेन्द्रियम्।

यही मन की प्रकृतिपुरुषान्यता या विवेकरख्याति है।

न मे पुण्यं न मे पापं न मे कार्यं न मे शुभम्।

न मे जीव इति स्वात्मा न मे किंचिज्जगत्त्रयम।।

मेरा पुण्य, पाप, कार्य, शुभ, जीव और संसार कुछ भी नहीं है, मैं प्रकृति से अलग परमात्मस्वरूप हूँ।

न मे ज्ञाता न मे ज्ञानं न मे ज्ञेयं न मे स्वयम्।

न मे तुभ्यं न मे मह्यं न मे त्वं च न मे त्वहम्।। (वही पृ. 77).

अर्थ सरल और स्पष्ट है।

मैं समस्त कारणों और कार्यों का सार हूँ और इन सबसे रहित भी हूँ। मैं समस्त सङ्कल्परहित सर्वशब्दमय शिव परमात्मा हूँ–

सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जित:।

सर्वसङ्कल्परहित: सर्वनादमय: शिव: (वहीं पृ. 86).

पुरुष या आत्मा से भिन्न प्रकृति का मिथ्यात्व दर्शाते हैं–

वेदं शास्त्रं पुराणं च कार्यं कारणमीश्वर:।

लोको भूतं जनस्त्वैक्यं सर्वं मिथ्या न संशय:।। (वही, पृ. 80).

वेद, शास्त्र, पुराण, कार्य, कारण, ईश्वर, लोक, भूत और जन सब मिथ्या हैं, मैं केवल एक परमात्मास्वरूप हूँ। योग के गुरु अपने शिष्य को उसका स्वरूप बताते हुए कहते हैं–

चिदाकार स्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरङ्कुश:।

आत्मन्येव स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुण:।। (वहीं, पृ. 86)

योगी का अपना अनुभव देखें–

न भूर्भुव: स्वस्त्रैलोक्यं न पातालं न भूतलम्।

नाविद्या न च विद्या च न माया प्रकृतिर्जडा।।

मेरे लिए भू, भुव और स्व तीनों लोक नहीं हैं। न पाताल है न पृथिवी है। न अविद्या है और न विद्या। न माया है और न जड़ प्रकृति। (वहीं, पृ. 86)

ब्रह्मैवाहं जडो नाहमहं ब्रह्म न मे मृति:।

ब्रह्मैवाहं न च प्राणो ब्रह्मैवाहं परात्पर:। (वही, पृ. 104).

मैं ब्रह्म हूँ, जड़ प्रकृति नहीं। मैं मृत्यु रहित हूँ। मैं प्राणरूप नहीं हूँ। मैं परब्रह्म

परमात्मस्वरूप हूँ। योगी सारे जगत् को ब्रह्म रूप में ही देखता है–

चैतन्यमात्रमोंकारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम्।
अहमेव जगत्सर्वमहमेव परं पदम्।।
अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः।
अहमेव परंब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः।। (वही, पृ. 104).

इस प्रकार बहुत ही सरल और मधुर भाषा में उपनिषत्कार ने अपने विवेकख्याति के अनुभव पाठकों से सांझा किए हैं। उसका कहना है– मैं ज्ञान, आनन्द और अद्वैत हूँ। मैं साक्षात् भगवान् सदाशिव हूँ। मैं समस्त ज्ञानों का प्रकाशरूप हूँ। मेरे से पृथक् सारा संसार उसी तरह मिथ्या है जैसे मरुमरीचिका मिथ्या होती है। मैं केवल नित्य और आनन्दमय परमात्मा हूँ।

दर्शनोपनिषत् का बड़ा मनोरम अनुभव है–

अशरीरं शरीरेषु महान्तं विभुभीश्वरम्।
आनन्दमक्षरं साक्षान्मत्वा धीरो न शोचति।। (पृ. 169).

शरीरों में शरीररहित आनन्दमय, अनश्वर, महान् और व्यापक परमात्मा का साक्षात्कार करके मनुष्य दुःख नहीं पाता। यह सम्प्रज्ञात समाधि संसार की नाशक है। यह आत्मा और परमात्मा की एकता है। योगसूत्रों और तेजोबिन्दु की तरह यहाँ भी परमात्मसाक्षात्कार का रूप समान है–

नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि मनो न हि।
सदा साक्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलः।। (पृ. 184).

ध्यानबिन्दु में इस अनुभव को जीव और ईश्वर के मिलन के रूप में दर्शाया गया है–

बिन्दुः शिवो रजः शक्तिर्बिन्दुरिन्दू रजो रविः।
उभयोः संगमादेव प्राप्यते परं वपुः।। (पृ. 205).

पाशुपतब्रह्म का मत है कि जो योगी विना तर्क और प्रमाणों के योगसाधना के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है वह परमात्मा को जानता है। हमारे अन्दर रहने वाले प्रकाशरूप परमात्मा तक प्रबल माया का भी प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मज्ञानी योगी के लिए जगत् भोजन और मृत्यु दाल बन जाती है। वह केवल अपने स्वरूप का ही भोजन करता है–

स्वस्वरूपं स्वयं भुङ्क्ते नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः। (पा.ब्र., पृ. 247) अर्थात् वह आत्मानन्द में मग्न रहता है।

मण्डल ब्राह्मण कहता है कि परमात्मासाक्षात्कार रूप विवेक ज्ञान में परिपूर्ण ज्ञान के होने से मन को उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है। इसमें परमात्मा के साथ एकता स्थापित हो जाती है। इससे योगी अमनस्क हो जाता है– उन्मन्या अमनस्कं भवति– (मं. ब्रा. 287) अर्थात् विवेकख्याति से मन अमन हो जाता है।

जागने से निद्रा तक की सभी अवस्थाओं के ज्ञान से वह ब्रह्म का ज्ञाता हो जाता है। वह ज्ञान–ज्ञेयादि वस्तुओं से परे जीवन्मुक्त हो जाता है।

योग कुंडलीकार इस अवस्था को निवृत्ति या चित्तनाश का कारण बताते हुए कहते हैं–

रूद्रग्रन्थिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।।
सैवावस्था परा ज्ञेया निर्वृत्तिकारणा।। (पृ. 321).

योगतत्त्व का वचन है कि योगी विवेकज्ञान से ही मुक्ति या कैवल्य को प्राप्त करता है। ज्ञानादेव विमुच्यते। कर्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।

जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः सर्वदोषविवर्जितः।। (योगशिखा, पृ. 399).

उसके लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। न ही उसको किए हुए कर्म बान्धते हैं। वह सदा सब दोषों से रहित होकर स्वच्छ और जीवन्मुक्त रहता है।

ब्राह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्म वै भवन्तीति विचिन्तय।। (वही, पृ. 438).

सभी प्राणी परमात्मा से पैदा होते हैं अतः सब जीवों में परमात्मा का ही दर्शन करना चाहिए।

घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।। (वही, पृ. 439).

जिस प्रकार घट नाम में पृथ्वी और पट नाम में धागे भासते हैं उसी प्रकार जगत् नाम में चेतना भासित होती है। यह सब कुछ परमात्मा ही है। उपनिषत् का उपदेश है कि सदैव भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए जो कि जीवों में अमृत का संचार कर रहे हैं।

नारायणमनुध्यायेत् स्रवन्तममृतं सदा।
ते हि विज्ञानसम्पन्ना इति में निश्चिता मतिः। (वराह, पृ. 470).

जो स्वयं प्रकाशमान निराधार परमात्मा को जानते हैं वे ही विवेकज्ञानसम्पन्न हैं।

एवं ब्रह्मपरिज्ञानादेव मर्त्योऽमृतो भवेत्। अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार करने से मुनष्य अमृतस्वरूप कैवल्य को प्राप्त हो जाता है। अपने आत्मा का साक्षात्कार करने से मनुष्य निर्भय हो जाता है। विदित्वा स्वात्मनो रूपं न विभेति कुतश्चन। अहं सत्यं परं ब्रह्म। मैं सत्य रूप परमात्मा हूँ, ऐसा उसका अनुभव हो जाता है।

अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्षज्ञानमेव तत्।
अहं ब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते।। (वराह, पृ. 476).

परमात्मा है, यह ज्ञान केवल परोक्ष ज्ञान है। मैं परमात्मा हूँ, यह ज्ञान तो साक्षात्कार है। 'अहं ब्रह्म' यह साक्षात्कार ही मोक्ष का कारण है। जो योगी सभी प्राणियों में चेतना को देखता है वही विज्ञानी, शिव, ब्रह्मा और विष्णु है।

एकमात्र तत्त्व परमात्मा के अनुभव से मनुष्य की वासना निवृत्त हो जाती है। अद्वैते बोधिते तत्त्वे वासना विनिवर्तते (वही, पृ. 481)। मैं सच्चिदानंदरूप परमात्मा हूँ, यह अद्वैत का ज्ञान है। उपनिषत् विवेकख्याति को अग्नि बताते हैं जिससे रागद्वेषादि समस्त दोष जल जाते हैं–

उत्पद्यमाना रागाद्या विवेकज्ञानवह्निना।
यदा तदैव दह्यन्ते कुतस्तेषां प्ररोहणम्।। (वही, पृ. 490).

यहां पर सप्तधाज्ञानभूमिका का भी राजयोगवत् उल्लेख है। भूमित्रयेषु विहरन् मुमुक्षुर्भवति। ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्। विचारणा द्वितीया तु। तृतीया तनुमानसी। सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी। प्रत्येक ज्ञानभूमि के लक्षण सरल और सुन्दर भाषा में निबद्ध हैं। तनुमानसी का स्वरूप देखें–

विचारणा शुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु रक्तता।
यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी।। (वही, पृ. 494).

पांचवीं भूमि का नाम संसक्ति है। इस भूमि में विहार करने वाला योगी श्रेष्ठ ब्रह्म ज्ञाता हो जाता है। षष्ठी भूमि में विचरण करने वाला योगी पहले से भी श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञाता बनता है। सातवीं भूमि तुर्यगा है। इसको प्राप्त योगी श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञाता हो जाता है। इसको गूढसुप्ता भूमि भी कहते हैं। सप्तमी गूढसुप्ताख्या।

विवेकख्याति नामक सिद्धि जीवन्मुक्ति है। यह योगसिद्धि का अन्तिम चरण है। यहाँ जीवन्मुक्तावस्था का हृदयग्राही भाषा में वर्णन है। पर्याप्त विस्तार भी है।

यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते।।

अर्थात् वह समस्त पदार्थों में व्यवहार करता हुआ भी शीतल स्वभाव परार्थी

और पूर्णात्मा होता है।

शिवो गुरुः शिवो वेदः शिवो देवः शिवः प्रभुः।
शिवोऽस्यहं शिवः सर्वं शिवादन्यन्न किञ्चन।। (वही, पृ. 498).

एक परमात्मा ही गुरु, वेद, देवता, प्रभु, मैं और सब कुछ है। परमात्मा शिव के अलावा और कुछ भी नहीं है। उसका साक्षात्कार करने पर न कोई मोह शेष रहता है न ही शोक। यह सम्प्रज्ञात समाधि आत्मा और परमात्मा की ऐक्यावस्था है। यह त्रिपुटीरहित, परमानन्दस्वरूपा और शुद्ध चैतन्यात्मिका होती है। इस योगी की दृष्टि में आने वाले सभी लोग पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो इस प्रकार जानता है वह कैवल्य को प्राप्त हो जाता है, यह ध्यान बिन्दु का मत है। यो एवं वेद पुरुषः स कैवल्यमश्नुते (पृ. 211)।

पाशुपत का कथन है कि वह अपने आत्मा में ही सदा सब कुछ निर्भय होकर देखता है। स्वात्मन्येव सदा सर्वं सदा पश्यति निर्भय– उप. पृ. 245. वह सदा सब कुछ देखते हुए भी अपने आत्मा से अलग कुछ भी नहीं देखता। ब्रह्म बिन्दु के अनुसार उसके ज्ञानमात्र से बन्धन से मुक्ति सुलभ है।

मंडल ब्राह्मण के अनुसार परमात्मा के साक्षात्कार से मुक्ति मिलती है। परमात्मध्यानेन मुक्तो भवति (पृ. 290), योग शिखानुसार योगी को प्रसन्न परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

□

प्रकरण – 22

विवेकख्याति में परवैराग्य से चित्त का नाश

विवेकख्याति योगसाधना से प्राप्त होने वाली वह अंतिम सिद्धि है जिसमें परवैराग्य करके चित्त का नाश अथवा कैवल्य प्राप्त हो जाता है। इसमें मन अपने स्वभाव या आत्मभाव को प्राप्त कर लेता है। यद्यपि विवेकख्याति मन की विशुद्ध अवस्था है फिर भी इसमें ध्येयाकार रूप में सात्त्विक वृत्ति शेष बनी रहती जो कि गुणवती है। अत: उसमें परिणाम उत्पन्न करने की शक्ति शेष होने से उसका भी निरोध करना जरूरी है। तस्यां विरक्तं चित्तं तामपि ख्यातिं निरूणद्धि। (योग शिखा, पृ. 415) अर्थात् इस विवेक ज्ञान में विराग हो जाने से उसका भी निरोध कर देता है या उसकी कार्यशक्ति को रोक देता है। व्यास के अनुसार चित्त की कार्यशक्ति केवल विवेकख्याति के रहने तक ही शेष रहती है। ख्यातिपर्यवसानं हि चित्तचेष्टितम्। विवेकख्याति के रहने तक ही चित्त या मन की सत्ता है। उसके निरोध के बाद चित्त की सत्ता नहीं रहती। उसके बाद की अवस्था को राजयोग की भाषा में असम्प्रज्ञात योग या निर्बीज समाधि कहते हैं। तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज: समाधि: (यो. सू. 1.51)। इस अवस्था में विवेकज्ञानजन्य संस्कारों का भी निरोध हो जाता है।

संस्कारों सहित चित्त के रूकने पर पुरुष अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्। वह शुद्ध, केवल और मुक्त हो जाता है। उसमें कर्मों के बीज का अभाव होने से उसको निर्बीज समाधि कहते हैं। यह योग का मुख्य फल है। वास्तव में बन्धन और मोक्ष की अवस्थाएं मन की हैं, पुरुष तो सदैव मुक्त है।

चित्त की इस नष्टावस्था या असम्प्रज्ञात समाधि में किसी प्रकार का सम्प्रज्ञान शेष नहीं रह जाता। व्यास के अनुसार उसमें समस्त वृत्तियाँ अस्त हो जाती हैं।

जहाँ सम्प्रज्ञात समाधि में ध्येय आलम्बन रूप होता है वहाँ असम्प्रज्ञात समाधि में ध्येय निरालम्ब या शून्य होता है। स चार्थशून्यः- (व्यास सू. 18)। यहाँ आलम्बन वस्तुहीन होता है। इसमें क्लेश, कर्म, जाति, आयु और भोग रूप बीज शेष नहीं रहते। इसमें वितर्कादि सभी समापत्तियों का त्याग कर दिया जाता है।

भोज के अनुसार सम्प्रज्ञातयोग में बाह्य वृत्तियों का निरोध किया जाता है जबकि असप्रज्ञात योग में समस्त वृत्तियों का उनके संस्कारों सहित विलय कर दिया जाता है। पहले में एकाग्रता होती है जबकि दूसरे में एकाग्रता का भी विलय कर दिया जाता है।

भोज के अनुसार जो उपासक अपना चित्त भव अथवा संसार में लय करते हैं उनको भवप्रत्यय योगी कहते हैं। यह योग न होकर योग का आभास है। इसमें परतत्त्व परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता। तेषां परतत्त्वादर्शनात् योगाभासोऽयम् (भोज सू. 1-19) ऐसे उपासकों का योगोपाय संसार विषयक होता है। संसार की उपासना करने से इनको फिर से संसार में लौटना पड़ता है।

इसके विपरीत श्रद्धा, वीर्य और स्मृति आदि उपायों को करने वाले उपासक उपाय प्रत्यय योगी कहलाते हैं। इनको क्रमशः धारणा, ध्यान और समाधि रूप उपाय करने से विवेकख्यातिरूप प्रज्ञा का लाभ होता है। उस प्रज्ञा का निरन्तर अभ्यास करने से उसके प्रति भी वैराग्य उत्पन्न होने से उसका भी निरोध कर दिया जाता है। तदभ्यासात्तद्विषयाच्च वैराग्यादसंप्रज्ञातः समाधिः (व्यास भा. सू. 1-20)।

प्रकृति और पुरुष के भेद ज्ञान के उदय होने पर उसमें निरन्तर अभ्यास के बाद उसके प्रति भी योगी में जो तृष्णा का अभाव हो जाता है वही परवैराग्य कहलाता है। योग में क्रमशः अभ्यास फिर उसके प्रति वैराग्य यह क्रमशः चलता है। अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। अन्त में परवैराङ्गय समस्त अभ्यासों से प्राप्त सिद्धियों को निरस्त कर देता है और चित्त कैवल्यावस्था को प्राप्त करता है। इस तरह योग के चरम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति के लिए एकमात्र उपाय विवेक ख्याति रूप सिद्धि को प्राप्त करके उसमें परवैराग्य करना जरूरी है। तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् (यो. सू. 1-16)।

अंतिम सिद्धि विवेकख्याति में भी अनात्म वस्तु का साक्षात्कार होता है। एक समय उसके प्रति भी वैराग्य का उदय हो जाता है। उस वैराग्य से चित्त के अंतिम सात्विक गुण का भी निरोध होने से योग की पूर्णता सम्पन्न हो जाती है। इसमें

सत्वादिगुण भोग्य के रूप में पुनः योगी के सामने उपस्थित नहीं होते। यही पुरुष या आत्मा की कैवल्यावस्था है। तत्पुरुषस्य कैवल्यम्। चित्त रूक जाता है। उसमें निरोध के संस्कार भी क्षीण हो जाते हैं। चित्त या मन का कार्य रूक जाता है। मन का उसके कारण प्रधान या प्रकृति में लय हो जाता है। पुरुष स्वरूपावस्था को प्राप्त हो जाता है। उसका मोक्ष रूप अन्तिम पुरुषार्थ भी समाप्त हो जाता है। ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् (यो. सू. 4-32)। गुण उसके लिए कोई परिणाम उत्पन्न नहीं करते। वह गुणमुक्त हो जाता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रकृति के तीन गुण केवल उस मुक्त पुरुष विशेष के लिए ही परिणाम उत्पन्न करना बन्द करते हैं, दुनियां के शेष अमुक्त पुरुषों के लिए वे यथावत् परिणाम उत्पन्न करते रहते हैं। यहाँ चित्त केवल एक पुरुषविशेष के लिए ही नष्ट होता है, शेष पुरुषों के लिए नहीं। कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् (यो. सू. 2-22)।

अमृतनाद का कहना है कि योगी शास्त्रों का अध्ययन करते हुए और बार-बार योग का अभ्यास करते हुए ब्रह्मज्ञान या विवेकख्याति को प्राप्त करके अन्त में अन्धेरा समाप्त होने पर उल्का (प्रकाश) के त्याग के समान उसका भी परित्याग कर दे। अर्थात् उसमें परवैराग्य करके कैवल्य को प्राप्त करे। अमृतबिन्दु भी विवेकख्याति में वैराग्य से मोक्ष की प्राप्ति होना बताता है। (अमृतबिन्दु पृ. 29) पर चित्त की मोक्षावस्था को परमार्थ की अवस्था बताता है–

न निरोधो न चोप्तत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तः इत्येषा परमार्थता।।

इस अवस्था में न निरोध, न उत्पत्ति, न बन्धन, न साधक, न मुमुक्षु और न मुक्त पुरुष होता है। यही मन की परमार्थता है।

क्षुरिका में चित्त कैवल्य को कैसे प्राप्त करता है उस की कैवल्यावस्था का स्वरूप देखें–

पाशान् छित्वा यथा हंसो निर्विशङ्कमुत्पतेत्।
छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते तदा।।
यथा निर्वाणकाले तु दीपो दग्ध्वा लयं व्रजेत्।
तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं व्रजेत्।।

जिस तरह हंस जाल को काटकर निडर होकर उड़ जाता है उसी प्रकार पुरुष अपने चित्त के बंधन को काटकर संसार सागर को पार कर जाता है।

जिस प्रकार बुझते समय दीपक जलकर लीन हो जाता है उसी प्रकार योगी का मन अपने सारे कर्मों को जलाकर प्रकृति में लीन हो जाता है।

इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि योगी विवेकख्याति में परवैराग्य के द्वारा कैवल्य को प्राप्त करता है। कैवल्य को प्राप्त योगी पुनः बन्धन में नहीं पड़ता। छित्त्वा तन्तुं न बध्यते। तेजोबिन्दु भी इस वचन का पोषक है। कैवल्यावस्था को प्राप्त योगी को योगोपनिषत् अनेक नामों से व्यक्त करते हैं। जैसे ब्रह्मभूत, प्रशान्तात्मा, सुखी, ब्रह्मानन्दमय, अमृतात्मा, विश्वात्मा, अकिञ्चन, आनन्दात्मा और मोक्षात्मा आदि आदि। तेजोबिन्दु इसे शून्यात्मा, देवात्मा, देवहीनात्मा, सर्वसङ्कल्प- हीनात्मा, परमात्मा, योगयुक्तात्मा, स्वयंज्योति, सर्ववृत्तिरहित, ब्रह्मामृतरसमग्न, ब्रह्मानन्दरसभर, निरन्तर ब्रह्मानन्द, अहंब्रह्मास्मिवर्जित, अक्षरात्मा और चिदात्मा आदि अनेक नामों से दर्शाता है। विवेकख्याति ज्ञानविषयक एक अहंभाव है उसमें वैराग्य करने से ऊपरोक्तावस्था प्राप्त होती है।

अहंभावं परित्यज।

तेजोबिन्दु में चित्त की कैवल्यावस्था का रोचक वर्णन देखें–

सर्वावस्था विनिर्मुक्तः सर्वचिन्ता विवर्जितः।
मृतवत्तिष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशयः।।

इसमें योगी समस्त चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। उसको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। योगी मृत व्यक्ति की तरह रहता है। इस प्रकार का योगी निस्संदेह मुक्त होता है।

उसकी देह काठ के समान चेष्टारहित होती है। उसकी अवस्था उन्मनी होती है। वह मनरहित हो जाता है। उसके ऊपर ठंड और गर्मी असर नहीं करते। वह सुख और दुःख से रहित हो जाता है। वह मान-अपमान से रहित होता है। वह जाग्रत और निद्रादि अवस्थाओं से रहित हो जाता है।

मण्डल ब्राह्मण के अनुसार उस अवस्था में भाव और अभाव से रहित पुरुष मात्र शेष रहता है। उसके ''मैं वह हूँ'' रूप संकल्प का नाश हो जाता है। यस्य सङ्कल्पनाशः स्यात् तस्य मुक्तिः करे स्थिता। यह अवस्था रहस्यमय होती है। अमनस्कमतिरहस्यमयम् (उप. पृ. 294)। चित्त सूखे पेड़ के समान हो जाता है, पुरुष शान्त और प्रचार शून्य हो जाता है। विष्णुरूप परमपद में मन का लय हो जाता है। योगसूत्रानुसार मन की इस अवस्था में सत्त्वादि तीनों गुणों का प्रतिप्रसव हो जाता है।

योग कुण्डली के अनुसार इसमें योगी अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य, अगन्ध, अनादि, अनन्त, परं महत्, अमल, निरामय और स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। शिष्यत्यमलं निरामयम्।

योग शिखा के अनुसार भी योगी का मन विष्णुरूप परमपद में लीन हो जाता है। तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।

हंसोपनिषत् के अनुसार मन के प्रकृति में लीन होने पर सदाशिव, स्वयं ज्योति, नित्य और निरञ्जन पुरुष प्रकाशित हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पतंजलि के राजयोग के सिद्धान्तों के अनुरूप ही यहाँ विवेकख्याति में परवैराग्य करके पुरुष ऊपरोक्त कैवल्यावस्था या स्वरूप को प्राप्त हो जाता है जो कि योगी के जीवन का परमलक्ष्य है।

□

प्रकरण – 23

राजयोग में ईश्वरादि तत्त्व और अन्य विशेषताएँ

ईश्वर प्रधान या प्रकृति से परे है। वह अविद्यादि क्लेशों से अस्पृष्ट पुरुष विशेष है। वह ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है। वह निर्गुण और अखण्ड है। शिव और विष्णु आदि उसके नाम हैं। जीवों पर कृपा करना उसका प्रयोजन है। उसको प्रणव भी कहते हैं। वह सर्वभूतान्तरात्मा ओर संसार रूप प्रपंच का कारण है। वही सगुण, नित्य, शुद्ध, विमुक्त, एक, अखंड, सत्य, ज्ञानमय, अनंत, अनेक मुख, अनेक वर्ण और देवादि रूपों वाला है।

वह संसार के समस्त पुरुषों से विशिष्ट है। क्लेशादि पदार्थ चित्त में विद्यमान होने पर पुरुष में आरोपित किए जाते हैं। इससे पुरुषक्लेशादि का भोक्ता कहा जाता है जो इस भोक्तापन से मुक्त है वही पुरुष विशेष ईश्वर कहा जाता है।

यो ह्यनेन भोगेनापरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः (व्या. भा. सू. 1–24)।

ईश्वर का क्लेशकर्मादि से न पहले सम्बन्ध रहता है न पश्चात्। यह सम्बन्ध केवल पुरुष से होता है। ईश्वर सदैव मुक्त अथवा ईश्वर ही रहता है। स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति। ईश्वर में सर्वज्ञत्वादि ऐश्वर्य विद्यमान हैं। उसके समान किसी अन्य का ऐश्वर्य नहीं है और न ही उससे अधिक है।

क्लिश्नन्ति इति क्लेशाः। जो पुरुष को दुःख देते हैं वे कलेश कहे जाते हैं। ईश्वर को ये क्लेश नहीं देते। अन्य पुरुषों से ईश्वर की विशेषता है। इच्छामात्रेण सकल जगदुद्धरणक्षमः– भोज। ईश्वर इच्छामात्र से संसार का उद्धार कर सकते हैं। मिश्र प्राणियों पर अनुग्रह करना ईश्वर का प्रयोजन बताते हैं। प्राणिनामनुग्रहः प्रयोजनम् (सू. 1–25)।

ईश्वर पूर्णानन्द, पारमार्थिक और संसार का आधार कारण है। वह ज्ञान का आधार है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी गुरु है। वही उपदेशक है। गुरुः उपदेष्टा–भोज। ईश्वर का नाम ओंकार है। तस्य वाचकः प्रणवः (सू. 1–27)

ओंकार का अर्थ परमेश्वर है। ओंकार से ईश्वर का स्तुतिगान किया जाता है। तेनाहूत: प्रसीदति। उस स्तुति गान से वे प्रसन्न होते हैं। वे करुणा के सागर हैं। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। स्वार्थे तृष्णासंभवात् (वाच. मिश्र)।

मुक्त पुरुष के लिए जीव और ईश्वर तत्त्व मायिक हैं और तीन गुणों से युक्त हैं। ईश्वर गुणों से परे है। गुणों के साक्षात्कार के उपरान्त जो शेष बचता है वही अद्वैत ब्रह्म है। अमृतबिन्दु के अनुसार ईश्वर ब्रह्म है। वह निर्विकल्पक, अनन्त और अनादि है। यहाँ ओंकार ही ब्रह्म है। निश्चल और शान्तादि गुण निर्गुण ब्रह्म के हैं। ईश्वर का इस प्रकार का स्वरूप राजयोग से ही योगोपनिषदों में आया है।

तेजोबिन्दु ईश्वर को अखण्डैकरस बताता है। अखण्डैकरसं ब्रह्म। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों को अखंडैकरस कहता है। त्रिशिख ब्राह्मण ने ईश्वर के निर्गुण और सगुण दो भेद किए हैं। वह करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाला है। वह नानाकारयुक्त, बहुमुख, अनेकायुधयुक्त और अनेक वर्णों वाला है। सगुण रूप केवल उपासनार्थ हैं। ये यहाँ नाना प्रकार के रूप राजयोग के विस्तार रूप ही हैं। व्यास के अनुसार ईश्वर के अनेक नाम और गुण एक ही ईश्वर में विद्यमान हैं। दर्शनोपनिषत् ईश्वर को सुख, सत्य, परब्रह्म संसाररोगौषधि, ऊर्ध्वरेता और विश्वरूप महेश्वर मानता है–

ऊर्ध्वरेतं विख्यातं विश्वरूपं महेश्वरम्।। (पृ. 182).

ध्यान बिन्दु एकाक्षरमय ओंकार को ईश्वर या परमात्मा मानता है। वह कोटि चन्द्र प्रभायुक्त है।

ब्रह्मविद्या ईश्वर के सकल और निष्कल दो भेद करता है। सकल पुरुष के समान और निष्कल पुष्पगन्ध के समान सूक्ष्म है। इसी प्रकार पहले को वृक्ष कहता है तो दूसरे को उसकी छाया बताता है। सकल मोक्ष का उपाय है तो निष्कल उपेय या प्राप्य है। इस प्रकार के भेद ध्यानबिन्दु में भी उपलब्ध हैं। सकले निष्कले भावे सर्वत्रात्मा व्यवस्थित:। योगकुण्डली में ईश्वर के नाम विश्व, तैजस, विराट् और हिरण्यगर्भ आदि दर्शाए गए हैं। जो जीव परमात्मा में लीन हो जाता है वह परमात्मा ही हो जाता है। परमात्मनि लीनं तत्परं ब्रह्मैव जायते (यो. कुं. पृ. 334)।

योगशिखा का ईश्वर सर्वभावातीत, ज्ञानरूप और निरंजन है। वह संसाररूप प्रपंच का उपादान कारण है, घड़े के लिए मिट्टी की तरह। कारणमय ईश्वर में ही संसाररूप कार्य विद्यमान है। वह आवागमन में भी विद्यमान है और आवागमन

से मुक्त भी है। गमागमस्थं गमनादिशून्यम् (यो. शि.)।

वराह का ईश्वर नित्य, एक, अखण्ड, आनन्दमय और अनन्त है। शाण्डिल्य के अनुसार वह सत्य, विज्ञान और अनन्त रूप है। ईश्वर अपाणि, अपाद, अशरीर, अचक्षु, अग्राह्य और अनिर्देश्य है। वह एक और अद्वितीय है। यदेकमद्वितीयम्–शां.। ईश्वर सर्वगत, सूक्ष्म, निरंजन, निष्क्रिय, सन्मात्र, चिदानन्दैकरस, शिव, प्रशान्त और अमृत है। वह सकल भी है और निष्कल भी।

हंस का ईश्वर शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन और शान्त है। त्रिशिखोप. के अनुसार ऊपरोक्त ईश्वर के विविध रूप एक ही ईश्वर के हैं।

योग में ईश्वर के समस्त रूपों पर विचार करने के बाद तथा कैवल्यावस्था पर विचार करने के बाद निष्कर्ष यह निकलता है कि ईश्वर को कोई एक रूप दिया ही नहीं जा सकता। योगाभ्यास के अन्त में ईश्वर का जो कोई भी एक रूप या अरूप हम निर्धारित करते हैं उसका भी परवैराग्य से अन्ततः त्याग ही करना पड़ता है। जो शेष बचता है वही ईश्वर है।

प्रकृति

प्रकृति को दृश्य कहते हैं। यह तीन गुणों वाली है। यह प्रधान है। यह कार्य जगत् का लयस्थान है। कारण प्रकृति नित्य है जबकि कार्य प्रकृति अनित्य। यह ब्रह्म या ईश्वर की उपाधि है। ईश्वर की इच्छा से इसमें क्षोभ होता है। सारा संसार प्रकृति का परिणाम है।

यह पुरुष के लिए भोग और मोक्ष का सम्पादन करती है। सत्त्व, रज और तम गुण क्रमशः प्रकाश, क्रिया और स्थितिरूप स्वभाव वाले हैं। इन्हीं गुणों का नाम प्रकृति है। यद्यपि तीनों गुण पृथक् पृथक् स्वभाव वाले हैं पर इनमें परस्पर उपराग हो जाया करता है। तीनों परिणामशील हैं। ये अविवेकी पुरुष के लिए संयोग करते हैं जबकि विवेकी के लिए वियोग। ये अपना अपना कार्य स्वतंत्र रूप से करते हैं, संकररूप से नहीं। तीनों गुणों में से एक समय में एक गुण सदैव प्रधान होकर कार्यशील होता है। उस समय शेष दो गुण गौण रूप से रहते हैं।

बन्धन और मोक्ष बुद्धिजन्य होने पर भी ये पुरुष में व्यवहृत होते हैं। वास्तव में युद्ध सेना करती है और युद्ध की जीत या हार व्यवहार से राजा के नाम जाती है। इसी प्रकार का यह व्यवहार है। कार्य गुण करते हैं नाम पुरुष का होता है।

विशेष, अविशेष, लिङ्गमात्र और अलिङ्ग नाम से सत्त्वादि गुणों की चार

अवस्थाएं हैं। पंचभूत, तन्मात्राएं और मन ये सोलह गुणों के विशेष परिणाम हैं। शब्द–स्पर्शादि गुणों के छः बुद्धि के विशेष परिणाम है। छः अविशेषों से पूर्वोत्पत्तिवश महत्तत्त्व को लिङ्गमात्र कहते हैं। छः अविशेष अलिङ्ग या प्रकृत्ति में लीन हो जाते हैं। प्रधान या प्रकृति किसी भी तत्त्व में लीन नहीं होती अतः वह अलिङ्ग है। प्रकृति पुरुषार्थजन्य नहीं है, वह नित्य है।

सर्वधर्मानुगामी सत्त्वादि गुण लय और उत्पत्ति से रहित होते हैं। महत्तत्त्व प्रकृति का कार्य है। अविशेष महत्तत्व में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहते हैं। पंचभूत और इन्द्रियाँ अविशेषों के कार्य हैं। सोलह परिणामों का धर्म लक्षणावस्था से कोई अन्य अवान्तर परिणाम नहीं होता।

विश्वरूप कार्य को धारण करने के कारण प्रकृति को प्रधान कहते हैं। आधीयते विश्वं कार्यमेभिः (तत्त्ववैशा. यो. सू. 2-18)। भिक्षु के अनुसार गुण ही प्रकृति है। ईश्वरेच्छा से प्रकृति में क्षोभ और वैषम्य उत्पन्न होते हैं। प्रकृति नित्य और अनित्य है। वह सत् और असत् है। सूत्रकार के अनुसार प्रकृति की सत्ता पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए है। तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा (2-21)।

तेजोबिन्दु के अनुसार दृश्य संसाररूप प्रकृति का प्रपंच अनित्य है। मन भी अनित्य है। मनोऽपि वा। ये सब अनात्मा हैं। अनात्मेति निश्चिनु। यह सब प्रपंच परिणामशील है। इदं प्रपंचं यत्किंचित्। दृश्य और द्रष्टा रूप संसार सब कुछ खरगोश के सींग के समान मिथ्या है। दृश्यरूपं च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत् तेजोबिन्दु (पृ. 96)।

त्रिशिखा के अनुसार अव्यक्त प्रकृति ब्रह्म या ईश्वर से उत्पन्न हुई है। महत् से अहंकार और अहंकार से पंचतन्मात्राएं पैदा हुई हैं। पंचतन्मात्राओं से पंचमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। पंचतन्मात्रेभ्यः पंचमहाभूतानि–त्रिशिखा (पृ. 117)। पंचभूतेभ्योऽखिलं जगत्। पंचभूतों से सारे संसार की उत्पत्ति होती है।

योग कुण्डली के अनुसार समस्त तत्त्वों का अपनी–अपनी उपाधि के साथ परमात्मा में लय हो जाता है। स्व स्वोपाधि लयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि (उप. पृ. 334)।

पुरुष

सर्वधर्म रहित निर्मल पुरुष मन की वृत्तियों को अपने में मान लेता है। वह दृक्शक्तिमात्र होता है। यह बुद्धि के न तो सरूप है और न विरूप। यह विषयों

का ज्ञाता है परिणामी नहीं। पुरुष स्वार्थ है जबकि बुद्धि परार्थ है। दोनों में वैषम्य है। वह सत्त्वादि गुणों का द्रष्टामात्र है समान रूप नहीं। बुद्धि के समान रूप प्रतीत होने से वह बुद्धि से अत्यन्त विपरीत रूप वाला भी नहीं है। मन की व्युत्थान या चञ्चलावस्था में वह वृत्ति के समान रूप वाला होता है। वृत्तिसारूप्य-मितरत्र (यो. सू. 1-4)।

पुरुष स्वामी है। पुरुषः स्वामी (व्या. भा. सू. 2-23)। वह एक गुण नहीं बल्कि प्रकाशरूप द्रव्य है। प्रकाशस्वरूपं द्रव्यम्। वह स्वयं ही विषय है और स्वयं ही प्रकाशक है।

पतंजलि के अनुसार पुरुष शुद्ध है। सुख-दुःख आदि उसकी अशुद्धियां हैं, उनसे मुक्त होना ही पुरुष का शुद्धिकरण है। वह अपरिणामी है। उसमें संसारक्रिया का अभाव है। वह ज्ञान स्वरूप है। पुरुष अनेक हैं। कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई बद्ध और कोई मुक्त। संसार व्यवस्थासिद्धेः-मिश्र (सू. 2-21)।

अमृत बिन्दु के अनुसार सभी जीवों में एक ही आत्मा निवास करता है, वह चञ्चल जल में अनेक चन्द्रमा के समान अनेक लगता है। ईश्वर की अनेकता का यह बड़ा सुन्दर उदाहरण है। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।

पुरुष अनश्वर है। गुण इसके मल हैं जो इसके लिए स्वरूप की प्राप्ति में बाधक है। सूत्रकार के अनुसार वह स्वभावतः शुद्ध है। जिस प्रकार समस्त रंगों की गायों में एक ही सफेद रंग का दूध पाया जाता है उसी प्रकार समस्त जीवों में एक ही पुरुष का वास है।

वराह पुरुष को स्वयंप्रकाश बताता है। स्वयं भान्तम्। इसको माया नहीं व्यापती। यह माया से विलक्षण है। तेभ्यश्चाहं विलक्षणः (उप. प्र. 417)। शांडिल्य के अनुसार जो सबको प्राप्त, ग्रहण और उनका भक्षण करता है उसको आत्मा या पुरुष कहते हैं। यस्मात् सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते। वराह का पुरुष बन्धन और मुक्ति से रहित है। योगशिखा के अनुसार वह निष्कल, निर्मल, शान्त, सर्वातीत और निरामय है। यही आत्मा यथाकर्मपुण्यपापादि फलों को भोगता है। यह संसार की वस्तुओं को अपना मानने के कारण बन्धन में पड़ता है। संसार में आसक्ति के कारण विशुद्ध परमात्मा जीव या पुरुष के भाव को प्राप्त होता है। काम क्रोध, लोभ, मोहादि चित्तरूप अशुद्धि को योगसाधना से दूर करके वह अपने शुद्ध व निर्मल स्वभाव को प्राप्त हो जाता है। पुरुष का वास्तविक मल समस्त वृत्तियों सहित चित्त है जिसका नाश करने पर योग का लक्ष्य पूरा होता है।

प्रथमकल्पिकादि योगी

भाष्यकार व्यास ने चार प्रकार के योगी बताए हैं। प्रथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति ओर अतिक्रान्तभावनीय। प्रवृत्तमात्रज्योति अभ्यासशील योगी प्रथम कल्पिक है। ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त दूसरे प्रकार का योगी है। जिसने महाभूत और इन्द्रियों को जीत लिया है वह तीसरे प्रकार का योगी है। चौथे प्रकार का योगी वह है जिसका केवल चित्तनिरोधरूप एक ही प्रयोजन शेष रह गया है।

मधुभूमिक या योगप्रदीप रूप चौथे प्रकार के योगी की चित्त की निर्मलता को देखते हुए इन्द्रादि देवता उसको स्वर्ग का आनन्द भोगने के लिए आदर पूर्वक निमन्त्रण देते हैं, ऐसा व्यास लिखते हैं। यहाँ योगी को प्रलोभन से बचना होता है।

मिश्र के अनुसार प्रथमकल्पिक योगी परचित्तविषयक होता है। चौथे प्रकार का अतिक्रान्तभावनीय योगी जीवन्मुक्त होता है। तस्य हि भगवतो जीवन्मुक्तस्य। दूसरे प्रकार के योगी के अतिरिक्त पहले, तीसरे और चौथे प्रकार के योगी को देवादिकों के निमन्त्रण की आशंका नहीं रहती।

वराहोपनिषत् ने भी चार प्रकार के योगी माने हैं। उनके नाम क्रमशः आरम्भ, षड्, परिचय और निष्पत्ति हैं।

> आरम्भश्च षडश्चैव तथा परिचयस्तथा।।
> निष्पत्तिश्चेति कथिताश्चित्तस्य भूमिकाः।। (पृ. 515).

यहाँ चौथे निष्पत्ति वाले योगी को जीवन्मुक्त समझना चाहिए। योगतत्त्वोपनिषत् भी वराहमत का अनुसरण करता है। योग शिखा का उपदेश है कि योगी चंचल मन को सिद्धि में न लगाए। सिद्धौ चित्तं न कुर्वीत चञ्चलत्वेन चेतसः (पृ. 449)। चंचल चित्त में अस्थिरता की आशंका स्वाभाविक है।

मन और चित्त की एकार्थता

सूत्रकार ने अनेक सूत्रों में मन और चित्त दोनों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। दूसरे ही सूत्र में वृत्तियों के साथ चित्त शब्द मिलता है। पहले पाद के ही 35 वें सूत्र में चित्त की स्थिरता के प्रसंग में चित्त की जगह मन शब्द का प्रयोग किया है। यहीं 37 वें सूत्र व व्याख्या में मनोजय के प्रसंग में मन और चित्त दोनों शब्दों का प्रयोग है।

धारणा योगांग में मन का प्रयोग मिलता है जबकि प्रत्याहार के प्रसंग में चित्त का। यह प्रयोग एक ही अर्थ में है। व्यास भाष्य में सिद्धियों के प्रसंग में

दोनों शब्द एकार्थक हैं। प्रसन्नं मे मनः शान्तं मे चित्तम् (सू. 1-10)।

योगसूत्र 3-34 की व्याख्या में वाचस्पति मिश्र द्वारा मन और चित्त का एक ही अर्थ में प्रयोग मिलता है। (वहीं, सू. 1-35) की व्याख्या में विज्ञान भिक्षु स्पष्ट लिखते हैं कि चित्त और मन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ समझना चाहिए। चित्तमेव मनः। इसी सूत्र की व्याख्या में भोज ने भी इन दोनों शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।

धारणा के प्रसंग में तेजोबिन्दु ने चित्त की जगह मन का प्रयोग किया है। यत्र यत्र मनो याति (उप. पृ. 53)। वहीं मूलबन्ध के प्रसंग में चित्त का प्रयोग मिलता है। यन्मूलं चित्तबन्धनम् (पृ. 52)। त्रिशिख ब्राह्मण में कर्मयोग के प्रसंग में दोनों शब्द समानार्थक हैं। वहीं ज्ञानयोग का स्वरूप बताते हुए दोनों शब्द एकार्थक हैं। यत्तु चित्तस्य सततमर्थे। द्विविधेऽप्यव्ययं मनः।

मण्डल ब्राह्मण का मनोलय का प्रसंग भी इससे मुक्त नहीं है। चित्तं प्राणेन सम्बद्धम् तद्वदिदं मनः। योगशिखा में भी दोनों तत्त्व एक ही हैं। योगशिखा में सुषुम्ना नाड़ी की चर्चा में मन और चित्त दोनों एकार्थक हैं। मनो यत्र विलीयते। यत्रोपरमते चित्तम्। नाद के प्रसंग में भी यही बात है।

वराह के अनुसार मन, बुद्धि अहंकार और चित्त एक ही अन्तःकरण के घटक हैं अतः स्थूल रूप से दोनों शब्द एकार्थक हैं। मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। शाण्डिल्योपनिषत् योगसाधना के प्रसंग में मन की जगह चित्त शब्द का प्रयोग करते हुए देखा जाता है। द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य (उप. पृ. 539)। नूनमुपशान्तं मनो भवेत्। व्यास ने तो मन की जगह बुद्धि शब्द का भी प्रयोग किया है। एक ही अन्तःकरण के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग करना राजयोग में सामान्य सा प्रतीत होता है जो कि योग के प्रधान लक्ष्य मोक्ष का ही पूरक है। □

प्रकरण – 24

राजयोग और हम

रचनान्त में मैं फिर से कहना चाहूँगा कि योगोपनिषदें योग के व्यावहारिक क्षेत्र की रचनाएं हैं। इनमें अनेक प्रकार की यौगिक क्रियाओं का वर्णन है जो अन्ततः योगी को परमस्वातन्त्र्य का लाभ करवाती हैं। कोई आसन करता है तो कोई मन्त्रजप। कोई विष्णु का नाम लेता है तो कोई रूद्र का ध्यान करता है। हर मनुष्य एक ही लक्ष्य परमस्वातन्त्र्य की ओर अग्रसर है। मनुष्य किसी भी पवित्र वस्तु का उपासक या पूजक हो वह उसी पदार्थ के माध्यम से परमेश्वररूप तत्त्व को प्राप्त कर सकता है। राजयोग की अनेक क्रियाएं बड़ी विचित्र सी लगती हैं पर जब हम उनमें चित्त के साथ उनका सम्बन्ध खोजते हैं तो परमलक्ष्य के राजमार्ग पर पहुँच जाते हैं।

जब हम आसन करते हैं तो आसन के लिए आसन नहीं करते। इसी तरह अष्टाङ्गयोग, ध्यान योग या साक्षात्कार केवल उसी महान् लक्ष्य के लिए करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि हम ईश्वर प्राप्ति के लिए जो भी साधन करते हैं उसको चित्त या मन के साथ मिलाकर देखें। मन से उसका क्या सम्बन्ध है? यह जानकर आगे बढ़ें। हम पाएंगे कि चित्तरूप तत्त्व को जाने विना योग अयोग है।

मन वास्तव में प्रकृति या संसार का अंश है और जड है। यह चेतन नहीं है। चेतन पुरुष है जो मन का द्रष्टा या दर्शक है। हमने भ्रान्तिवश पुरुष या आत्मा को मन समझ लिया है। वास्तव में 'मैं' मन नहीं आत्मा है जो हमारी खाने, पीने, सोने और जागने आदि समस्त गतिविधियों का साक्षी है। मैं या पुरुष को मन से अलग अनुभव करना ही विवेकख्यातिरूप सिद्धि है जो कि सर्वज्ञतायुक्त है। यह भी योगी का लक्ष्य नहीं है क्योंकि इसमें ज्ञान का अहंकार रहता है। केवल परमेश्वर का साक्षात्कार करना भी मनुष्य का लक्ष्य नहीं हो सकता। उसका लक्ष्य तो परमेश्वर के तद्रूप हो जाना है जिसमें न केवल उसका मन समाप्त हो जाता

है बल्कि वह परमेश्वर के स्वरूप और नित्यानन्द को प्राप्त करता है। तब वह स्वयं कुछ नहीं करता है बल्कि उसके रूप में परमेश्वर सब कुछ करता है। ईश्वरेच्छा बलीयसी। वह स्वयं सर्वचिन्तामुक्त शान्त और आनंदस्वरूप हो जाता है। चित्त से चित् बनने की यही प्रक्रिया राजयोग है। हर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व राजयोग की इस प्रक्रिया को अपनाकर परमस्वातन्त्र्यपूर्वक परमानन्द का लाभ उठा सकता है। जयतु योग: जयतु मानव:।

□

प्रकरण – 25

राजयोग : एक सार संक्षेप

योग विश्वजनीन धर्म का एक अंग है। याज्ञवल्क्य कहते हैं 'अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्' अर्थात् आत्मदर्शन के साधन को योग कहते हैं। व्यास भाष्य के अनुसार 'योगः समाधिः' अर्थात् चित्त को समाहित करना ही योग है। चित्त के निरोध या नाश को राजयोग कहते हैं। योग में वृत्तियों का निरोध होता है जबकि राजयोग में चित्त का ही निरोध हो जाता है। चित्त को मन भी कहते हैं। चित्त या मन समस्त वृत्तियों का मूल है। अमृतबिन्दूपनिषद् में 'बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः' के अनुसार विषयासक्त चित्त को बद्ध माना गया है।

योग वैदिककाल से लेकर मानव का उपकार करता आ रहा है। राजा विक्रमादित्य से दौ सौ वर्ष पूर्व पतंजंलि ने योग को दर्शनसूत्रों का रूप दिया था। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। परम्परानुसार उनको पातञ्जलयोगसूत्र, व्याकरण महाभाष्य और चरक संहिता का कर्ता माना जाता है। दर्शनसाहित्य सदैव वेदों और उपनिषदों से प्राणशक्ति ग्रहण करता रहा है। साँख्यवेदान्तादि सभी दर्शनों के मूल सिद्धान्त प्राचीन उपनिषदों में बिखरे रूप में मिलते हैं। राजयोग के स्रोतग्रन्थ भी यही उपनिषद् हैं। मुनि पतंजलि ने अपने से पूर्व के योगसाहित्य का गहन अनुशीलन करके योगसूत्रों की रचना की थी। राजयोग में कुल 195 सूत्र मिलते हैं। ये सूत्र अल्प मात्रा में होने पर भी रहस्यमय हैं।

योग को उपासना भी कहते हैं। अपने इष्टदेव के साथ सान्निध्य प्राप्त करने के साधन को उपासना कहते हैं। योग अथवा उपासना के दर्शन का नाम ही राजयोग है। दूसरे शब्दों में योग के दार्शनिक पक्ष को राजयोग कहते हैं। योगोपनिषद् के अनुसार एक ही महायोग की मन्त्र, लय, हठ और राजयोग नाम की चार भूमिकाएं होती हैं। शास्त्रों के अनुसार राजयोग योग की सर्वोच्च भूमिका है।

अद्वयतारकादि योग से सम्बन्धित उत्तरवर्ती 21 उपनिषदों में राजयोग के सिद्धान्तों का व्यावहारिक विवेचन प्राप्त होता है। उन्हीं के अनुशीलन से पता चलता है कि

राजयोग का विकास उत्तरकाल में योगोपनिषदों के रूप में किस प्रकार से हुआ था।

चित्त के नाश को राजयोग कहते हैं। योगशिखा के 'चित्तं विनष्टम्' कथन से यह स्पष्ट हो जाता है। राजयोग का 'कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं...' इत्यादि सूत्र भी इस बात का पोषक है। सांख्य-योग के अनुसार सत्त्व-रज-तम इन तीन गुणों का नाम प्रकृति है। प्रकृति के पहले परिणाम को चित्त कहते हैं। वराहोपनिषद् के अनुसार अन्त:करण के 4 भेदों में से चित्त भी एक है। चित्त का स्थान सुषुम्ना नाड़ी बताया गया है। अमृतबिन्दु के अनुसार 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:' अर्थात् मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। तेजोबिन्दु कहता है 'अनात्मेति मनोऽपि वा' अर्थात् मन अनात्म पदार्थ है। तत्त्ववैशारदी में चित्त या मन को दु:खों का मूल कारण बताया गया है। राजयोग से चित्त का नाश और चित्त का नाश होने से दु:खों का नाश बताया गया है। चित्त के परिणाम को वृत्ति कहते हैं। विज्ञानभिक्षु के अनुसार वृत्तियों पर चित्त का जीवन आश्रित है। तेजोबिन्दु में चित्तवृत्तियों को खरगोश के सींगों की तरह असत् बताया गया है। दिक्पालादि समस्त देवता भी चित्तवृत्तियाँ ही बताई गई हैं।

व्यास के अनुसार सर्व वृत्तियों के निरोध के बाद ही चित्त का नाश संभव है। चित्त स्वयं भी अपनी वृत्ति है। वृत्तिहीन चित्त ही मुक्ति का अधिकारी होता है। पातञ्जल सूत्रों के अनुसार अभ्यास और वैराग्य रूप साधनों से चित्त और उसकी वृत्तियों का निरोध होता है।

मन की स्थिरता के लिए किए जाने वाले प्रयत्न को अभ्यास कहते हैं। ज्ञान की पराकाष्ठा या चरम सीमा को वैराग्य कहते हैं। ईश्वरप्रणिधान राजयोग का वैकल्पिक साधन है। ईश्वर की भक्ति को ईश्वरप्रणिधान कहते हैं। ईश्वर का नाम प्रणव अथवा ओम् है। योगशिखा में प्रणव को चित्त, नाद और बिन्दु भी कहा गया है।

योगसूत्रों में चञ्चल चित्त वालों के लिए क्रियायोग अथवा कर्मयोग के अनुष्ठान का निर्देश किया गया है। व्यास के अनुसार व्रतोपवासादि क्रियाओं से चित्त की तम और रजरूप अशुद्धियों का क्षय होना बताया गया है। क्रियायोग से चित्त पर विजय प्राप्त होती है। दर्शनोपनिषत् में जपयोग का सूक्ष्मविवेचन है। यमाद्यष्टांगयोग से चित्त की अशुद्धियों का क्षय और विवेकख्याति पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है। योगोपनिषदों में योगांगों की संख्या भिन्न-भिन्न बताई गई है। क्षुरिका के अनुसार योगांगानुष्ठान राजयोग का साधन है। इसके द्वारा चित्त की शुद्धि के साथ-साथ ज्ञान की वृद्धि बताई गई है। मंडल ब्राह्मण के अनुसार परमात्मध्यान भी राजयोग

का साधन है। योगशिखा के अनुसार चित्त षट्चक्रों को पार कर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाता है। ईश्वरप्रणिधान से रोगादि योगविघ्नों का नाश होता है।

मैत्री और करूणादि परिक्रमों या साधनों से चित्त प्रसन्न, एकाग्र और स्थिर होता है। वृत्तिक्षय तथा निर्मलता उत्पन्न होने पर चित्त में समापत्तिरूप विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं। चित्त की पदार्थाकारता को समापत्ति कहते हैं। इसी का पर्याय सम्प्रज्ञात समाधि है। समापत्तियाँ सदैव सालम्बन होती हैं। मंडल ब्राह्मण के अनुसार परमात्मविषयक समापत्ति से पुरुष विवेकख्याति अथवा जीवनमुक्ति को प्राप्त होता है। धारणा-ध्यान-समाधि तीनों का सम्मिलित नाम संयम है। नाना प्रकार की विभूतियों में संयम करने से नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। चक्षु अथवा सूर्य में संयम करने से समस्त लोकों का ज्ञान होता है। सिद्धियों में प्रलोभन के अधीन होने से राजयोगी का पतन होना बताया गया है। समापत्ति का सूक्ष्मतम आलम्बन अलिंग प्रकृति है। इसे निर्विचार समाधि कहते हैं। इसमें प्रवीणता प्राप्त होने पर ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। यह केवल सत्य को धारण करती है। रजोलेश निवृत्त होने पर इसे धर्ममेघ समाधि कहते हैं। इसमें सत्त्वपुरुषान्यतामात्र वृत्ति शेष रह जाती है। इसको विवेकख्याति कहते हैं। इसमें पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है। यह चित्त का ही एक परिणाम है। सत्त्वगुणमय होने से विवेकख्याति भी अनात्म पदार्थ है। इस अवस्था में संसार चिन्मय रूप में अनुभूत होता है। यहाँ ब्रह्मैवाहं परात्पर: अर्थात् मैं ही परात्पर परमात्मा हूँ केवल यह वृत्ति शेष रह जाती है। यही योग की पराकाष्ठा है।

विवेकख्याति प्राप्त योगी का धीरे-धीरे सत्त्वगुण के प्रति भी अनुराग शेष नहीं रहता। सत्त्वगुण में वैराग्य होने पर चित्त नष्ट हो जाता है। इसी को राजयोग या असंप्रज्ञातसमाधि और कैवल्य कहते हैं। इसमें पुरुष स्वरूपावस्था को प्राप्त हो जाता है और राजयोगी के प्रति गुणों का परिणाम समाप्त हो जाता है। गुण कृतार्थ हो जाते हैं। अमृतबिन्दु कहता है-

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधक:।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त: इत्येषा परमार्थता।।

अर्थात् राजयोगी के लिए निरोध, उत्पत्ति और बन्धनादि कुछ भी शेष नहीं रह जाते। वह परमस्वतन्त्र होकर परमानन्द को प्राप्त करता है और परमसत्तास्वरूप हो जाता है। यही योग का राजयोगरूप परमफल है।

□

प्रकरण – 26

संकेत-तालिका

क्रम	पुस्तक (उपनिषत्)	संकेत
1.	अद्वयतारक	अ. ता.
2.	अमृतनाद	अ. ना.
3.	अमृतबिन्दु	अ. बि.
4.	तेजोबिन्दु	ते. बि.
5.	दर्शन	द.
6.	ध्यानबिन्दु	ध्या. बि.
7.	नादबिन्दु	ना. बि.
8.	पाशुपतब्रह्म	पा. ब्र.
9.	ब्रह्मविद्या	ब्र. वि.
10.	मण्डलब्राह्मण	म. ब्रा.
11.	योगकुण्डली	यो. कु.
12.	योगचूड़ामणि	यो. चू.
13.	योगतत्त्व	यो. त.
14.	योगशिखा	यो. शि.
15.	वराह	व.
16.	शाण्डिल्य	शां.
17.	हंस	हं.
18.	क्षुरिका	क्षु.
19.	त्रिशिखब्राह्मण	त्रि. ब्रा.
20.	महावाक्य	म. वा.
21.	योगराज	यो. रा.
22.	पातञ्जलयोगसूत्र	यो. सू.

23.	योगोपनिषदः	उप.
24.	योगराजोपनिषद्	यो. रा.
25.	व्यासभाष्य	व्या. भा.
26.	तत्त्ववैशारदी	त. वै., वाचस्पति मिश्र
27.	योगवार्त्तिक	यो. वा., भिक्षु
28.	भोजवृत्ति	भो. वृ.
29.	पृष्ठ	पृ.
30.	उपनिषत्	उप.

☐

प्रकरण – 27

सहायक ग्रन्थ–सूची

1. अग्निपुराण, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1973
2. अमरकोष, भानुजी दीक्षित, निर्णयसागर, सागर प्रेस, बम्बई, 1944
3. ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्, हितचिन्तक प्रेस, बनारस, 1938
4. उपनिषद् विज्ञानभाष्यभूमिका, मोतीलाल शर्मा, राजस्थान वैदिक तत्त्व शोध संस्थान, जयपुर 1959
5. कठोपनिषद् गीता प्रेस, गोरखपुर (शांकरभाष्य सहित)
6. तैत्तिरीयोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1962
7. दर्शन अनुचिन्तन, गिरिधर शर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1969
8. दर्शन का प्रयोजन, भगवान दास, ज्ञान मण्डल, बनारस, 1953
9. दर्शन दिग्दर्शन, राहुल सांस्कृत्यायन, लखनऊ, 1959
10. पातञ्जल योगदर्शन, पतंजलि मुनि, सं. रामशंकर भट्टाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1949
11. पातञ्जल योगदर्शन–सूत्र, प्रमुख भाष्य व टीकाएं मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1949
12. पातञ्जल योग प्रदीप, स्वामी ओमानन्द तीर्थ, गीता प्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।
13. पातञ्जल योगसूत्रवृत्ति, सं. राम शंकर भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी
14. बृहदारण्यकोपनिषद्, आनन्द गिरि, वाणी विलास, बनारस, 1954
15. भारतीय दर्शन का इतिहास, डॉ. राधाकृष्णन्, लखनऊ, 1959
16. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, 1970
17. भारतीय दर्शन–भाग 1, 2, 3, डॉ. राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1966

18. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, नागरी मुद्रणालय, काशी, 1990
19. भारतीय दर्शन, धर्मेन्द्रनाथ, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1953
20. भारतीय दर्शन परिचय, हरिमोहन झा, पुस्तक भण्डार, लहेरिया, सराय, 1970
21. भारतीय प्रज्ञा, रामावतार शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 1952
22. मेदिनी कोश, चौखम्बा बनारस, 1940
23. योगदर्शन, श्रीराम शर्मा, सं. सं. बरेली, 1964
24. योगोपनिषद्, शास्त्री अ. महादेव, अड्यार पुस्तकालय, 1920
25. योगराजोपनिषद्, जगदीश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980
26. वाचस्पत्यम् सं. तारानाथ भट्टाचार्य चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी
27. शब्दकल्प द्रुम, राधाकान्तदेव, चौखम्बा, बनारस, 1962
28. शब्दार्थ कौस्तुभ, सं. द्वारका प्रसाद शर्मा, रामनारायण लाल, प्रकाशक इलाहाबाद 1957
29. शाश्वत कोश, सं. नारायणनाथ ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, 1929
30. षड्दर्शन रहस्य, रंगनाथ पाठक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1958

□